एच.एल. दुसाध
डाइवर्सिटी मैन ऑफ इंडिया

डॉ. कौलेशवर प्रियदर्शी–डॉ. अनीता गौतम

पब्लिकेशन्स
अतुल्य

प्रकाशक : **अतुल्य पब्लिकेशन्स**
सी-5/एफ-2, ईस्ट ज्योति नगर
दिल्ली-110093
computekin@gmail.com

© सर्वाधिकार : लेखक

प्रथम संस्करण : 2017

आईएसबीएन : 978-93-82553-19-9

मूल्य : सजिल्द-250/- रुपये
अजिल्द-100/- रुपये

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032

मुद्रक : कॉम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

अनुक्रम

सम्पादकीय **5**

हम सबसे भयावह दौर में हैं—साल में दो करोड़ नौकरियां देने की जगह, अब नौकरी पैदा करने की नसीहत—5, टॉप की दस प्रतिशत आबादी के पास 81 प्रतिशत धन-संपत्ति—6, दुसाध के व्यक्तित्व और कृतित्व को सामने लाने की क्यों पड़ी जरुरत!—7, यह आरक्षण पर संघर्ष का परिणाम है—7, भारत का इतिहास : आरक्षण पर केन्द्रित संघर्ष का इतिहास—8, आरक्षण पर संघर्ष के आधुनिक नायक—8, मंडलोत्तर भारत में ही जुटा हिन्दू साम्राज्यवाद के ध्वंस का सामान—9, आरक्षण का वर्गीकरण : बहुजन एकता पर शासक दलों का बड़ा हमला—10, इतिहास के गर्भ से निकला डाइवर्सिटी का मुद्दा—11, आर्थिक विषमता के खात्मे के लिए ही वजूद में आया : बीडीएम—13, मानव जाति की बड़ी समस्याएं : विविधता की अनदेखी का परिणाम—13, मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या पर : दुसाध का अनोखा चिंतन—14, बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का उदय—15, डाइवर्सिटी लागू करवाने के लिए : फ्रांस क्रांति का रूप देना होगा—17, बहुजन मूव्हमेंट को गति देने में 50% योगदान अकेले दुसाध का—18, राजनीतिक दलों के घोषणापत्रों में डाइवर्सिटी—19, डाइवर्सिटी टाइप मुद्दे के समक्ष भाजपा की हार—20, वर्तमान हालात में दुसाध का चिंतन और प्रासंगिक क्यों!—20, भाजपा को शिकस्त देना पहले से कठिन!—22, सावधान! मोदी को सामाजिक न्याय का नया मसीहा बनाने कि तैयारी चल रही है—22, भाजपा की शक्ति के स्रोत—26, बहुजनवादी दलों की शक्ति का स्रोत : सामाजिक अन्याय का शिकार विशालतम आबादी—27, बहुजनों की सापेक्षिक वंचना : भाजपा के खिलाफ साबित हो सकती है बारूद का ढेर!—28, सापेक्षिक वंचना के सद्व्यवहार के लिए : डाइवर्सिटी—30

अध्याय-1 : परिचय : दुसाध और डाइवर्सिटी **35**

एच.एल.दुसाध की पुस्तकें—36

मानव-जाति की बड़ी समस्याएं : विविधता की अनदेखी का परिणाम—एच.एल. दुसाध 41

अध्याय-2 : दुसाध की पुस्तकों पर विद्वानों की राय—डॉ. अनीता गौतम **62**

क्रांतिकारी समाज वैज्ञानिक रचना—62, एक बहुविषयक और बहुआयामी ग्रन्थ—63, दलित चेतना के इतिहास में एक मील का पत्थर—64, दुसाध जी को ज्ञानपीठ और

नोबेल पुरस्कार मिलना चाहिए–65, राष्ट्रीय अखबारों में पहला लेख : ओलम्पिक और हम–66, अछूत की कसौटी सछूत के लिए–अभय कुमार दुबे–66, दुसाध : हिन्दू पत्रकारिता के लिए एक बड़ी चुनौती–68, डाइवर्सिटी पर केन्द्रित भारत की पहली किताब–69, दलित आन्दोलनकारियों के लिए धारदार हथियार–70, विस्मित हुए पाठक–70, भूमंडलीकरण की अर्थनीति की मुकम्मल काट–71, हिंदुत्व की राजनीति पर विशालतम रचना : सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिंदुत्व–71, हिंदी पत्रकारिता में एक नया अध्याय–72, सामाजिक परिवर्तन और बीएसपी–73, दुसाध का ओरिजिनल आंकलन–74, दुसाध : अत्यंत उच्चकोटि के थियोरेटीशियन–74 सवर्ण लेखकों से भिन्न आंकलन–74, बसपा को भारतीय संरचनात्मक परिवर्तन के एक कारक के रूप में, हिंदी में किसी लेखक ने ऐसा अध्ययन नहीं किया–75, दुसाध पत्रकार या किसी विश्वविद्यालय का प्रोफेसर!–75, दलित और बहुजनों से जुड़ी पत्रकारिता के साम्राज्य पर दुसाध का एकछत्र राज–76

अध्याय-3 : एच.एल. दुसाध : फेसबुक पर सक्रिय विद्वानों की नजर में 78

Brijpal Bharti–80,Kanwal Bharti–80, Dr. Lal Ratnakar–80, Sobran Kabir–81, Shailendra Mani–81, Satish Chandra Gaurav–82, देशदीपक दुसाध–82, Mukesh Kumar Kumar–82, Lalajee Nirmal–83, Karmendu Shishir–83, Arvind Kumar Chakrawarti–83, Frank Huzur–83, Adv. Arun Prakash–84, Chandra Bhushan Singh Yadav–84

अध्याय-4 : विद्वानों की नजर में : दुसाध का चिंतन

आरक्षण पर एक नया प्रस्ताव–दिलीप मंडल 84

बहुजनों में बहुजनों का विकास कैसे हो!–सुधीन्द्र कुलकर्णी 89

एच. एल. दुसाध : डाइवर्सिटी मैन ऑफ इण्डिया–अभिजीत कुमार 93

एच.एल. दुसाध : समकालीन भारत के कार्ल मार्क्स–डॉ. राजबहादुर मौर्य 96

धन-धरती : डाइवर्सिटी केन्द्रित पहला उपन्यास–सुरेश पंडित 107

डाइवर्सिटी, बीडीएम और दुसाध–डॉ. कौलेश्वर 113

डाइवर्सिटी : आंबेडकरी आन्दोलन का पर्याय–113, डाइवर्सिटी के योद्धा–113, आरक्षण की सीमाबद्धता–114, डाइवर्सिटी की व्यापकता–115, डाइवर्सिटी के सूत्रपात्री : चंद्रभान प्रसाद–116, एच.एल. दुसाध ने डाइवर्सिटी को दिया जन-आंदोलन का रूप–117, बीडीएम बनाम कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र–117, डाइवर्सिटी आन्दोलन का असर–118

सम्पादकीय

हम सबसे भयावह दौर में हैं

इस देश के जन्मजात वंचितों के नजरिये से यदि आजाद भारत के इतिहास का आंकलन करें तो पाएंगे कि हम निर्विवाद रूप से सबसे भयावह दौर से से गुजर रहे हैं। इस दौर में आजाद भारत की सर्वाधिक शक्तिशाली सरकारों में से एक, मोदी सरकार जो फैसले ले रहे रही है, वह जन्मजात वंचितों के लिए दुःस्वप्न है। इस दौर में श्रम कानूनों को निरंतर कमजोर किया एवं नियमित मजदूरों की जगह ठेकेदारी प्रथा लागू कर मजदूर वर्ग को अभूतपूर्व शोषण के दलदल में फंसाया जा रहा है। साफ दिख रहा है कि आज भारत की राजनीति पूरी तरह नवउदारवाद के खूनी पंजों में आ चुकी है और देश का शासक वर्ग कार्पोरेट के एजेंट की भूमिका में उतर आया है। जनता का पैसा कार्पोरेट के विकास में लगे और जनता को भान न हो, ऐसी नीतियां बनाई जा रही हैं।'[1] सरकार भारी संख्या में लाभजनक उपक्रमों को निजी हाथों में देने में अभूतपूर्व तत्परता दिखलाने के साथ-साथ बेखौफ होकर सुरक्षा तक से जुड़े उपक्रमों में 100 प्रतिशत एफडीआई लागू कर रही है।

साल में दो करोड़ नौकरियां देने की जगह, अब नौकरी पैदा करने की नसीहत

हर साल दो करोड़ नौकरियां दिलाने का वादा कर सत्ता में आई सरकार ने केंद्र की भर्तियों में 89 प्रतिशत तक की कटौती कर दिया है। बीते मार्च में इसकी पुष्टि करते हुए सरकार की ओर से बताया गया था कि 2013 में 1, 51, 841 नौकरियां दी गयी थीं, जो 2014 में घटकर 1, 26, 261 रह गयीं और 2015 में केवल 15, 877 लोगों की सीधी भर्ती की गई। सरकार बुलेट ट्रेन की नीव रख दी है, किन्तु रेलवे में दो लाख खाली पड़े पद नहीं भर रही है। इस दौर में देश की शान समझी जाने वाली इंडियन एयर लाइन्स और रेलवे स्टेशनों को निजी हाथों में देने की तैयारी शुरू हो चुकी है और सरकारी अस्पतालों, बैंकों, स्कूलों, सार्वजनिक

परिवहन व्यवस्था की हालत सुनियोजित तरीके से पतली की जा रही है ताकि इन क्षेत्रों को निजी हाथों में देने की मांग खुद जनता ही उठाने लगे। इसके लिए सरकार समर्थक बुद्धिजीवी और मीडिया भी माहौल बनाने में जुट गयी है। 'अर्थव्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण संकेतक हैं नौकरियां हैं, लेकिन हम रोजगार के मौके कम होते देख रहे हैं। सेंटर फॉर मॉनिटरिंग ऑफ इंडियन इकॉनमी की रिपोर्ट के अनुसार जनवरी 2017 से अप्रैल 2017 के दौरान 15 लाख छीन गयीं। सालाना 2 करोड़ नौकरियों पैदा करने के अपने वादे को अनदेखा करते हुए प्रधानमंत्री ने नौकरियां मांगने की बजाय पैदा करने की नसीहत दे डाली है।'[2]

टॉप की दस प्रतिशत आबादी के पास 81 प्रतिशत धन-संपत्ति

डॉ. आंबेडकर ने 25 नवम्बर, 1949 को राष्ट्र को चेताते हुए कहा था कि हमें जल्द से जल्द आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्मा कर लेना होगा नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता गणतंत्र की व्यवस्था को विस्फोटित कर देगी। किन्तु आजाद भारत के शासकों ने बाबा साहेब की उस चेतावनी को गंभीरता से नहीं लिया। 'उसकी अनदेखी पंडित नेहरू, इंदिरा गाँधी, जय प्रकाश नारायण, राजीव गांधी, नरसिंह राव, अटल बिहारी वाजपेयी जैसे इत्यादि राजनीति के सुपर स्टार तक कर गए। बाद में जब नयी सदी में विकास का नया दौर शुरू हुआ, उसके खतरों से निपटने के लिए एक दशक पूर्व देश के अर्थशास्त्रियों और बुद्धिजीवियों ने जो अपील किया, उसकी अनदेखी मोदी की भाजपा सहित दूसरे दल भी करते गए। फलतः पिछले एक दो सालों में विषमता पर देश-विदेश की जितनी भी रिपोर्टें आईं हैं, उनमें पाया गया कि भारत जैसी विषमता दुनिया में कहीं और है ही नहीं। इस मामले में वैश्विक धन-बंटवारे पर क्रेडिट सुइसे की रिपोर्ट काफी चौकाने वाली रही, जिसमें बताया गया था कि सामाजिक आर्थिक न्याय के सरकारों के तमाम दावों के बावजूद भारत में तेजी से आर्थिक गैर-बराबरी बढ़ी है। 2000 से 2015 के बीच जो कुल राष्ट्रीय धन पैदा हुआ, उसका 81 प्रतिशत टॉप की दस फीसद के पास गया। जाहिर है शेष निचली 90 प्रतिशत आबादी के हिस्से में मात्र 19 प्रतिशत धन आया। उस रिपोर्ट के मुताबिक 19 प्रतिशत धन की मालिक 90 प्रतिशत आबादी में से भी नीचे की 50 प्रतिशत आबादी के पास 4.1 प्रतिशत ही धन आया।'[3] क्रेडिट सुइसे की ही बात को आगे बढ़ाते हुए मार्च, 2017 में प्रकाशित 'मानव विकास सूचकांक की रिपोर्ट में बताया गया कि 'मानव विकास के मामले में विश्व के 187 देशों में से 131 वें स्थान पर रहने वाला भारत अरबपतियों की संख्या के हिसाब से चौथे स्थान पर आ गया है। रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2000 के दौरान भारत की सर्वाधिक धनी 1 प्रतिशत आबादी के पास 37 प्रतिशत संपत्ति हुआ करती थी जो 2005 में बढ़कर 42 प्रतिशत, 2010 में 48 प्रतिशत, 2012 में 52 प्रतिशत तथा 2016 में 58.5 प्रतिशत तक पहुँच गयी।'[4]

दुसाध के व्यक्तित्व और कृतित्व को सामने लाने की क्यों पड़ी जरुरत!

उपरोक्त तथ्यों के आईने में क्या कोई इस बात से इन्कार कर सकता कि हम सबसे भयावह दौर में वास नहीं कर रहे हैं? नहीं, कोई भी इंकार नहीं कर सकता। इन्कार इस बात से भी नहीं कर सकता कि इससे बहुजन समाज उद्भ्रान्त होकर हाँथ-पैर मार रहा है पर, कोई सटीक रास्ता नहीं सूझ रहा है। ऐसे में हमने बहुत सोच-समझकर देश के जाने माने विचारकों की राय के जरिये 'डाइवर्सिटी मैन ऑफ इंडिया' के रूप में विख्यात एच. एल. दुसाध के व्यक्तित्व और कृतित्व को सामने लाने का प्रयास किया है। एच. एल. दुसाध के व्यक्तित्व और कृतित्व को सामने लाने का मतलब पाठकों को आम लेखकों की भांति उनके जीवन संघर्ष से नहीं, डाइवर्सिटी नामक एक ऐसे वैचारिक आन्दोलन से रूबरू कराना है, जिसमें देश ही नहीं, मानव जाति की हर बड़ी समस्या का हल है।

यह आरक्षण पर संघर्ष का परिणाम है

बहरहाल उपरोक्त पंक्तियों में जन्मजात वंचितों के लिहाज से जो भयावह तस्वीर उभरी है, उसे आमतौर पर अर्थशास्त्री सरकारों की गलत नीतियों का परिणाम बताकर संतुष्ट हो जाते हैं। पर, क्या सरकारों की गलत नीतियों के चलते ही ऐसा हो गया या इच्छाकृत रूप से ऐसा किया गया! क्या दुसाध के शब्दों में डॉ. आंबेडकर द्वारा लोकतंत्र के ढाँचे के विस्फोटित होने की चेतावनी के बावजूद पंडित नेहरु, जेपी, वाजपेयी इत्यादि से लगाये, 70 सालों में जो नहीं हुआ, वह अब हो रहा है का दावा करने वाले महाशक्तिशाली नरेंद्र मोदी विश्व में सर्वाधिक भीषण रूप में फैली विषमता की समस्या की यूं ही अनदेखी किये जा रहे हैं? क्या नवउदारवादी अर्थनीति की जिस संगठन के लोग यह कहकर वर्षों से शोर मचाते रहे हैं कि 'अब जो स्थितियां और परिस्थितियां बन या बनाई जा रही है, उसके फलस्वरूप देश आर्थिक रूप से विदेशियों का गुलाम बन जायगा, फिर हमें विदेशियों से स्वतंत्रता संग्राम की भांति आर्थिक मुक्ति का संग्राम चलाना पड़ेगा, वैसे संगठन से प्रशिक्षित लोग यूं ही सुरक्षा तक से जुड़े उपक्रमों में 100 प्रतिशत एफडीआई लागू कर रहे

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

हैं?[5] क्या यूं ही श्रम कानूनों को खत्म तथा भर्तियों में 90 प्रतिशत तक की कटौती करने के साथ-साथ ऐसे हालात बनाये जा रहे हैं जिससे एयर इंडिया, बैंक, रेलवे स्टेशनों सहित तमाम लाभजनक सरकारी उपक्रम, सरकारी अस्पताल, जेल, स्कूल इत्यादि निजी हाथों में चले जायं? क्या यूं ही हजारों साल से शिक्षालयों से दूर धकेले गए बहुजनों को उच्च शिक्षा से पूरी तरह आउट करने के लिए शिक्षा का दैविक अधिकारी वर्ग सर्वशक्ति लगा रहा है?[6] नहीं! इन सवालों का जवाब और लोग चाहे कुछ भी दें, दुसाध का अध्ययन कहता है कि यह सब शक्ति के समस्त स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक- धार्मिक-शैक्षिक इत्यादि) पर 80-85 प्रतिशत कब्जा जमाये परम्परागत विशेषाधिकारयुक्त व सुविधाभोगी तबके को और शक्तिसंपन्न तथा मूलनिवासी बहुजनों को पूरी तरह शक्तिहीन करने की सुपरिकल्पित योजना के तहत किया गया है और ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि भारत का इतिहास आरक्षण पर संघर्ष का इतिहास है।'[7]

भारत का इतिहास : आरक्षण पर केन्द्रित संघर्ष का इतिहास

भारत का इतिहास आरक्षण पर संघर्ष का इतिहास है, इस विषय में दुसाध ने बहुत विस्तार से बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का घोषणा पत्र (पृ. 17-43 तक) सहित अन्य कई पुस्तकों और लेखों में लिखा है। उन्होंने इसकी भूमिका बांधते हुए लिखा है-'सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई में हर व्यक्ति, समूह और संगठन ने इतिहास से प्रेरणा लेने की कोशिश की है। इस क्रम में उसने मानव के संघर्षों के मूल अंतर्विरोध को समझने की कोशिश किया है, जो देश-काल की परिस्थितियों के आधार पर विभिन्न बिन्दुओं पर रहा है। लेकिन जो कारण सर्वत्र व्याप्त रहा, वह आर्थिक कारण है। अर्थात दुनिया में सर्वत्र ही मानव-मानव के बीच लड़ाई का कॉमन कारण संपदा-संसाधनों का कब्जा जमाना रहा है। संभवतः इसीलिए दुनिया के महानतम विचारक मार्क्स ने कहा है कि दुनिया (मानव जाति) का इतिहास वर्ग व आर्थिक संघर्ष का इतिहास है। पर, अगर मार्क्स के अनुसार मानव जाति का इतिहास वर्ग व आर्थिक संघर्ष का इतिहास है तो भारत का इतिहास आरक्षण पर संघर्ष का ही इतिहास है। और अगर भारत का इतिहास आरक्षण पर संघर्ष का इतिहास है तो वह मूलतः वर्ण/जातिय संघर्ष का इतिहास है।'[8]

आरक्षण पर संघर्ष के आधुनिक नायक

भारत का इतिहास सिर्फ और आरक्षण पर संघर्ष का इतिहास है, इसकी युक्ति खड़ी करते हुए दुसाध कहते हैं कि जिस वर्ण-व्यवस्था के द्वारा यह देश सदियों से परिचालित होता रहा है, उसके प्रवर्तकों ने इसकी परिकल्पना चिरस्थाई तौर पर शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीतिक- धार्मिक-शैक्षिक इत्यादि) को पूरी तरह अपनी भावी पीढ़ी के लिए आरक्षित करने को दृष्टिगत रखकर की थी। चूंकि शुद्रातिशूद्र देवासुर संग्राम काल से ही वर्ण-व्यवस्था में शक्ति के स्रोतों से पूरी तरह बहिष्कृत रहे इसलिए वे समय-समय पर इसमें अपनी हिस्सेदारी के लिए संघर्ष करते रहे। इस क्रम में शक्ति के स्रोतों पर काबिज सुविधा-संपन्न वर्ग से उनका संघर्ष होता रहा। संपदा-संसाधनों के हिस्सेदारी के मसले पर शक्ति-शून्य शुद्रातिशूद्रों और शक्ति-संपन्न सवर्णों के मध्य संघर्ष ही भारत में वर्ग संघर्ष का इतिहास है। आधुनिक भारत में इस संघर्ष को शिखर पर पहुंचाया ज्योतिबा फुले, शाहूजी महाराज, रामासामी पेरियार और खास तौर से डॉ. आंबेडकर ने। आंबेडकर उत्तरकाल में जिन्होंने इस संघर्ष को खासतौर से आगे बढाया, वे थे बिहार के लेनिन जगदेव प्रसाद, रामस्वरूप वर्मा और बहुजन नायक मान्यवर कांशीराम।'[9]

मंडलोत्तर भारत में ही जुटा हिन्दू साम्राज्यवाद के ध्वंस का सामान

प्राचीन काल में देवासुर संग्राम के बाद वर्ण-व्यवस्था के जिस अर्थतंत्र पर हिन्दू-साम्राज्यवाद शिखर पर पहुंचा और परवर्ती काल में दो-दो नव साम्राज्यवादियों (मुसलमान और इसाइयों) द्वारा अधीन बनाये जाने के बावजूद अटूट रहा एवं जिसके विरुद्ध आधुनिक युग में सशस्त्र संग्राम प्लासी युद्ध से शुरू हुआ, उस साम्राज्यवाद के ध्वंस का जबरदस्त सामान मंडलोत्तर भारत में ही जुटा। दलितों को वितरणहीनता से निजात दिलाने के दूरगामी लक्ष्य को लेकर कांशीराम ने वर्ण-व्यवस्था में वितरणशून्यता का शिकार बनाई गयी जातियों को संगठित करने व उनकी जाति चेतना का राजनीतिकरण करने का जो प्रक्रिया शुरू किया, उसमें 7 अगस्त, 1990 को मंडल की रपट आने के बाद आश्चर्यजनक रूप से उछाल आ गया। तब कलहरत हजारों वंचित जातियों के मध्य आरक्षण के साझा स्वार्थ के कारण जबरदस्त भाईचारा पैदा हुआ। भाईचारा पैदा होने का मतलब हिन्दू साम्राज्यवाद के सुविधाभोगी वर्ग के खिलाफ तीव्र आक्रोश। सदियों की वंचना की पीड़ा उनमें इस कदर पूंजीभूत हुई कि चुनाव जीतकर सत्ता में पहुंचना हिन्दू आरक्षण के सुविधाभोगी के लिए दुष्कर हो गया। लेकिन जो आरक्षण वंचितों की एकता का आधार बनकर हिन्दू साम्राज्यवादियों की जमीन दरकना शुरू किया, उसे वे आत्म-दाह, संपदा-दाह से लेकर धर्म, धर्म से लेकर चाणक्य नीति के जरिये खत्म करने की दिशा में काफी हद सफल हो गए।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

आरक्षण का वर्गीकरण : बहुजन एकता पर शासक दलों का बड़ा हमला

बहरहाल मंडल उत्तरकाल के ढाई दशकों में सवर्णवादी दलों की नवउदारवादी नीतियों के चलते भारत का परम्परागत विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न तबका और शक्तिशाली हुआ है। दूसरी ओर निजीकरण, उदारीकरण, भूमंडलीकरण की नीतियों ने आरक्षण को लगभग कागजों की शोभा बनाकर दलित, आदिवासी, पिछड़े और इनसे धर्मान्तरित तबकों की हालत बेहद पतली कर दी है। इस काम में गांधीवादी और राष्ट्रवादी, दोनों दलों के प्रधानमंत्रियों ने एक दूसरे को पीछे छोड़ने में होड़ लगाया है। किन्तु दावे के साथ कहा जा सकता है नवउदारवादी नीतियों के जरिये वर्तमान प्रधानमंत्री ने नरसिंह राव, मनमोहन सिंह और अटल बिहारी वाजपेयी को बहुत पीछे छोड़ दिया है। उनके तीन साल के कार्यकाल का सिंहावलोकन करने पर ऐसा लगता है मानो वह आरक्षित वर्गों से बदला ले रहे हैं। उन्होंने अपनी शातिर चालों से सिर्फ आरक्षण को काफी हद तक खत्म ही नहीं किया है बल्कि, यह जानते हुए भी योग्य अभ्यर्थी उपलब्ध न होने के कारण भारी मात्रा में आरक्षित पद खाली रह जाते हैं, उन्होंने ओबीसी के आरक्षण में वर्गीकरण के जरिये आरक्षित वर्गों की एकता को शेष करने का खतरनाक चाल चल दिया है। फिलहाल वह ऐसा ओबीसी के आरक्षण में कर रहे हैं। किन्तु निकट भविष्य में ऐसा एससी/एसटी के आरक्षण के साथ नहीं हो सकता, इसके प्रति आश्वस्त होना कठिन है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जो बहुजन एकता शक्ति के स्रोतों पर सदियों से कब्जा जमाये सुविधाभोगी वर्ग के लिए मंडल उत्तरकाल में आतंक का सबब बन गयी थी, मोदी ने उस पर अभूतपूर्व आघात कर दिया है। ऐसा करने के क्रम में वे आरक्षण के संघर्ष पर केन्द्रित भारतीय इतिहास में सुविधाभोगी वर्ग के महानतम नायक के रूप में उभरे हैं। इस कारण ही आज 'भाजपा संघ के दर्जनों आनुषांगिक संगठनों सहित 90 प्रतिशत सवर्णवादी मीडिया, 90 प्रतिशत पूंजीपतियों और प्रायः 90 प्रतिशत से अधिक साधु-संतों का समर्थन पाकर एक अप्रतिरोध्य दल के रूप में उभर गयी है।'[10]

सारांश में यही कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत से शुरू हुए आरक्षण पर केन्द्रित संघर्ष में शुद्रातिशूद्र वर्ग न सिर्फ निर्णायक रूप से अपनी लड़ाई हारता प्रतीत हो रहा है, बल्कि जो आरक्षण परस्पर कलहरत इस वर्ग को जोड़ता है[11], आरक्षण के वर्गीकरण के जरिये उस एकता को भी छिन्न-भिन्न करने की जमीन तैयार की जा रही है। अगर शासक दल आरक्षित वर्गों में शत्रुता फैलाने के षडयंत्र सफल हो जाता है, तब भविष्य में बहुजनों की सत्ता कायम होना भी बहुत कठिन हो जायेगा। इसीलिए हमारा मानना है कि हम इस समय सबसे भयावह दौर से गुजर रहे हैं और उससे उबरने में सर्वाधिक कारगर हो सकता है दुसाध का डाइवर्सिटी चिंतन, क्योंकि उन्होंने आज के हालात की कल्पना कर ही लगातार लेखन और चिंतन किया है।

इतिहास के गर्भ से निकला डाइवर्सिटी का मुद्दा

इस विषय में दुसाध ने लिखा है, 'जब मंडलोत्तर भारत में आधुनिक भारत के चाणक्य नरसिंह राव ने 24 जुलाई , 1991 को नयी वैश्विक अर्थनीति(रणनीति)ग्रहण की, तब शुद्रातिशूद्रों के मन में यह आशंका पैदा हुई कि यह सब आरक्षण के खात्मे के लिए किया जा रहा है। ऐसे में उनमें निजी क्षेत्र में आरक्षण की मांग कुंडली मारने लगी। धीरे-धीरे कई संगठन निजी क्षेत्र में आरक्षण की मांग को लेकर कई सड़कों पर उतरने लगे । और जब राष्ट्रवादी अटल बिहारी वाजपेयी सत्ता में आकर अपने गुरु नरसिंह राव को बौना बनाने का लक्षण दिखाने लगे, तब मूलनिवासी शुद्रातिशूद्रों को शतप्रतिशत विश्वास हो गया कि सत्ता पर काबिज हिन्दू आरक्षणवादियों का एकमेव लक्ष्य आंबेडकरी आरक्षण को कागजों तक सिमटाना है। तब निजी क्षेत्र में आरक्षण की मांग शोर में बदलने लगी। सभा-सेमिनारों, पत्र-पत्रिकाओं में यह नयी मांग अधिक से अधिक स्पेस बनाने लगी। और समस्त आर्थिक गतिविधियों को निजी हाथों में देने पर आमादा वाजपेयी जब 31 मार्च, 2003 तक का समय रहते, 31 मार्च, 2001 तक ही 1429 वस्तुओं पर से मात्रात्मक प्रतिबंध हटाने के बाद, परम आंबेडकर विरोधी अरुण शौरी को विनिवेश मंत्री बनाकर सरकारी उपक्रमों को औने-पौने दामों में बेचने की दिशा में तेजी से आगे बढे, उन्ही दिनों चंद्रभान प्रसाद और उनके कुछ सहयोगियों के सौजन्य से भारतीय बौद्धिक क्षितिज पर सर्वव्यापी आरक्षण वाली डाइवर्सिटी का उदय हुआ। बाद में उनके ही उद्योग और अब्राहम लिंकन जैसे संवेदनशील हृदय के स्वामी व मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह के सक्रिय सहयोग से 12-13 जनवरी, 2002 को दलित बुद्धजीवियों का महासम्मेलन अनुष्ठित हुआ। दो दिनों के भारी विचार मंथन के बाद उस सम्मलेन से इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों से निबटने और सामाजिक परिवर्तन की धारा को तीव्रतर करने के उद्देश्य से 'डाइवर्सिटी' केन्द्रित 21 सूत्रीय दलित एजेंडा जारी हुआ, जिसे 'भोपाल घोषणापत्र' भी कहते हैं।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

भोपाल घोषणा को दलित मुक्ति का चार्टर मानते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने 25 जनवरी, 2002 को राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में इसे अपनाने की अपील कर डाली थी। घोषित तौर पर भोपाल घोषणा इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों से निपटने का 21 सूत्रीय एजेंडा था पर, सच तो यह है कि कई हजार वर्ष पूर्व वैदिक मनीषियों ने वर्ण-व्यवस्था (हिन्दू-आरक्षण)के सूत्रों द्वारा मूलनिवासियों के समक्ष जो पहाड़ समान समस्याएं खड़ी की थी, इक्कीसवीं सदी में उसी का मुकम्मल प्रतिकार था, डाइवर्सिटी केन्द्रित दलित एजेंडा। यह आरक्षण के संघर्ष पर केन्द्रित भारत के इतिहास में संभवतः सबसे महत्वपूर्ण अध्याय का आगाज था।

2002 की जनवरी में भोपाल कांफ्रेंस के बाद डाइवर्सिटी ने राष्ट्र का बड़े पैमाने पर ध्यान आकर्षित किया था पर, लोग शंकित थे कि क्या वंचितों को राष्ट्र की प्रत्येक गतिविधियों में हिस्सेदारी दिलाने वाली डाइवर्सिटी कभी लागू हो पायेगी? किन्तु जब 27 अगस्त, 2002 को मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने सरकारी आदेश से सप्लायर डाइवर्सिटी लागू की, तब आरक्षण के खात्मे की आशंका से भयाक्रांत ढेरों दलितों में एक नयी उम्मीद का संचार हुआ। फिर तो ढेरों व्यक्ति व संगठन अपने-अपने तरीके से डाइवर्सिटी आन्दोलन को आगे बढाने में जुट गए। नेताओं में जहां डॉ. संजय पासवान ने इस मुद्दे पर पहली बार संसद का ध्यान आकर्षित करने के बाद कई संगोष्ठियां आयोजित किया, वहीं बीएस-4 के राष्ट्रीय अध्यक्ष आरके चौधरी ने निजी क्षेत्र में 'आरक्षण-अमेरिका के डाइवर्सिटी पैटर्न पर' को अपनी राजनीतिक पार्टी का एकसूत्रीय एजेंडा बनाकर डाइवर्सिटी के पक्ष में अलख जगाना शुरू किया। भोपाल घोषणा से प्रेरित होकर कई संगठनों ने डाइवर्सिटी केन्द्रित मांगपत्र जारी किया। इस बीच कई डाइवर्सिटी संघर्ष समितियां भी अस्तित्व में आईं, जिनमें दिल्ली डाइवर्सिटी ग्रुप और उत्तर प्रदेश डाइवर्सिटी ग्रुप स्वयं चंद्रभान प्रसाद की देखरख में गठित हुआ।'[12] लेकिन मध्य प्रदेश में सप्लायर डाइवर्सिटी लागू होने के बाद डाइवर्सिटी लागू करवाने को लेकर जो ढेरों संघर्ष समितियां वजूद में आईं, कुछ वर्षों बाद उनके उत्साह में भाटा शुरू हो गया। इसे लेकर जो माहौल बना था, वह गायब होने लगा। इसमें नए सिरे से उत्साह का संचार तब हुआ जब 15 मार्च 2007 को एच. एल. दुसाध ने बहुजन लेखकों को लेकर 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन संगठन'(बीडीएम) की स्थापना किया। इसकी स्थापना का सबब बताते हुए दुसाध जी ने लिखा है-'राज्यों से लेकर केंद्र सरकारों की डाइवर्सिटी के प्रति भयावह अरुचि; अफरमेटिव एक्शन प्लान को कोटे में तब्दील करने में उद्योग चौम्बरों की भारी अनिच्छा और मौजूदा विकास दर में बहुजनों की नगण्य भागीदारी सहित लगभग आधे दर्जन अन्यान्य कारणों ने हमें भागीदारी दर्शन के महानायक कांशीराम के जन्मदिवस पर बहुजन डाइवर्सिटी की स्थापना के लिए बाध्य किया।'[13]

आर्थिक विषमता के खात्मे के लिए ही वजूद में आया : बीडीएम

वास्तव में आर्थिक में आर्थिक विषमता के खात्मे के लिए ही बीडीएम वजूद में आया। इसका खुलासा करते हुए दुसाध जी ने कहा है, 'चूँकि बीडीएम भी मानता है कि आर्थिक विषमतायें ही वह मर्ज है, जिसके कारण मानव समाज में दूसरी विषमताएं और असह्य वेदनाएं देखी जाती हैं तथा यह भूमंडलीकरण के दौर में भारत में और विकराल रूप धारण करेगी, इसलिए इसका एकमात्र लक्ष्य देश में सदियों से व्याप्त आर्थिक गैर-बराबरी दूर करना है। इसके लिए यह मुख्य रूप से मूलनिवासियों (दलित/आदिवासी-पिछड़े व इनसे धर्मान्तरित) को उनकी संख्यानुपात में शासन-प्रशासन और देश के कारोबार में भागीदारी दिलाने के उपायों पर कार्य करेगा।'[14] ऐसे में आर्थिक विषमता के दूरीकरण के उद्देश्य से बीडीएम मान्यवर कांशीराम के भागीदारी दर्शन और अमेरिका के डाइवर्सिटी सिद्धांत से प्रेरणा लेकर, भारत की सामाजिक विविधता को सामाजिक प्रतिनिधिकरण में रूपायित करने अर्थात विविधतामय भारत के चार सामाजिक समूहों -1 अनुसूचित जाति/जनजाति, (2) पिछड़ा वर्ग, (3) धार्मिक अल्पसंख्यकों और (4) सवर्णों के संख्यानुपात में अवसरों के बंटवारे के लिए राष्ट्र को तैयार करने का अभियान चलाने की घोषणा करता है।'[15]

मानव जाति की बड़ी समस्याएं : विविधता की अनदेखी का परिणाम

आर्थिक विषमता पर दुसाध जी का उपरोक्त चिंतन नयी सदी के शुरूआती दौर का है, जो 2007 में प्रकाशित 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का घोषणापत्र' में नजर आया। लेकिन इस समस्या पर निरंतर चिंतन-मनन करने के बाद परवर्तीकाल में वह आर्थिक के साथ सामाजिक विषमता को एक साथ मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या करार देने लगे। उनका यह संशोधित विचार 2012 में प्रकाशित उनकी रचना 'मानव जाति की बड़ी समस्याएं : विविधता की अनदेखी का परिणाम' में पूरी तरह निखर कर सामने आया। उस पुस्तक में इसी शीर्षक से छपा एक लेख हमने इस पुस्तक में भी डाला है ताकि पाठक मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या के विषय में दुसाध के चिंतन की झलक पा सकें। इस लेख की भूमिका में चरमोत्कर्ष

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

पर पहुंची मानव सभ्यता को उद्धृत करते हुए उन्होंने कहा है, 'किन्तु तमाम उपलब्धियों के बावजूद दावा नहीं किया जा सकता कि मानव जाति पूरी तरह से समस्यामुक्त हो चुकी है। हम कई तरह के संकटों से जूझ रहे हैं जिसके लिए खासतौर से जिम्मेवार है मानव जाति में विविधताओं को सम्मान देने के पर्याप्त गुणों का अभाव।'[16] मानव जाति के दो बड़े संकटों—'सभ्यताओं के टकराव' और 'ग्लोबल वार्मिंग' के पीछे धार्मिक-सांस्कृतिक तथा जैविक विविधता की अनदेखी की क्रियाशीलता को चिन्हित करते हुए वह 'मानव जाति की बड़ी समस्याएं : विविधता की अनदेखी 'उपशीर्षक में बहुत दावे के साथ कहते हैं-'हंटिग्टन पंथी सभ्यताओं के टकराव की जितनी भी भयावह तस्वीर पेश करें और पर्यावरणवादी ग्लोबल वार्मिंग की तबाही का जितना भी भयावह खांका खींचें, ये मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या के रूप में चिन्हित नहीं हो सकतीं। हजारों सालों से लेकर आजतक निर्विवाद रूप से आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी ही मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या रही है।'[17]

मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या पर : दुसाध का अनोखा चिंतन

वैसे तो आर्थिक और सामाजिक विषमता को ढेरों विद्वानों ने ही अपने-अपने तरीके से मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या के रूप में चिन्हित किया है। लेकिन इसकी उत्पत्ति का जो वैज्ञानिक सूत्र दुसाध जी ने दिया है, वह सबसे अलग है। उन्होंने साबित किया है—'पूरी दुनिया में आर्थिक और सामाजिक विषमता की उत्पत्ति समाज में शक्ति के स्रोतों का विभन्न सामाजिक समूहों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से होती रही है। ध्यान देने की बात है कि सदियों से ही मानव समाज जाति, नस्ल, लिंग, भाषा इत्यादि के आधार पर कई समूहों में बंटा रहा है। जहां तक शक्ति का सवाल है, समाज में इसके तीन प्रमुख स्रोत हैं-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक। शक्ति के ये स्रोत जिस समूह के हाथों में जितना ही संकेंद्रित रहे, वह उतना ही शक्तिशाली, विपरीत इसके जो जितना ही इनसे दूर व वंचित रहा वह उतना दुर्बल व अशक्त रहा। सदियों से समतामूलक समाज निर्माण के लिए जारी संघर्ष और कुछ नहीं शक्ति के स्रोतों में वंचित तबकों को उनका प्राप्य दिलाना रहा है'।[18] इस समस्या का खात्मा सिर्फ और सिर्फ शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता के प्रतिबिम्बन के जरिये ही क्यों हो सकता है, इस विषय में उनका चिंतन एकदम अनूठा है। उन्होंने कहा है, 'यह सही है कि हजारों वर्षों से दुनिया के हर देश का शासक-वर्ग ही कानून बना कर शक्ति का वितरण करता रहा है। पर, यदि हम यह जानने की कोशिश करें कि सारी दुनिया के शासक जमातों ने अपनी स्वार्थपरता के तहत कौन सा रास्ता अख्तियार कर सामाजिक और आर्थिक विषमता को जन्म दिया; शक्ति का असमान वितरण किया तो हमें विश्वमय एक विचित्र एकरूपता का दर्शन होता है। हम पाते हैं कि सभी ने ही शक्ति के केन्द्रों में सामाजिक (social) और लैंगिक (gender) विविधता (diversity) का असमान प्रतिबिम्बन करा कर ही मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या को जन्म दिया। अगर हर जगह शक्ति के स्रोतों का बंटवारा विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं की संख्यानुपात में किया गया होता तो क्या दुनिया में आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबर की स्थिति ही पैदा होती?'[19]

शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता के प्रतिबिम्बन के जरिये ही आर्थिक और सामाजिक विषमता से उपजी तमाम समस्यायों का समाधान किया जा सकता है, इसकी उपलब्धि करते हुए ही लोकतांत्रिक रूप से परिपक्व अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया इत्यादि ने अपने-अपने देशों में शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता के प्रतिबिम्बन का अभियान चलाया, जिसके फलस्वरूप वहां के जन्मजात वंचितों - महिलाओं, अश्वेतों, अल्पसंख्यकों- इत्यादि को शक्ति के स्रोतों में वाजिब हिस्सेदारी मिली और वहां शांति और समृद्धि कायम हुई। लेकिन हर बात में विदेशियों की नकल करने वाले भारत के शासक विविधता के मामले में विदेशियों से प्रेरणा नहीं लिए। फलस्वरूप यहाँ हजारों साल के विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न वर्ग का सदियों से शक्ति के स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा पूर्ववत है। शक्ति के स्रोतों में शासक दलों के विविधता के प्रतिबिम्बन से परहेज करने के कारण ही आर्थिक और सामाजिक विषमता के जल्द से जल्द खात्मा करने का बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का 25 नवम्बर, 1949 का आह्वान पूरी तरह व्यर्थ चला और भारत विषमता के भीषणतम दल में फँस गया। ऐसे हालत में ही बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का उदय हुआ। इस पर रोशनी डालते हुए दुसाध ने ने लिखा है -:

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का उदय

'स्वाधीन भारत के शासकों की लोकतंत्र-विरोधी नीतियों के चलते आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी का जो बेइंतहां विस्तार हुआ उसके खात्मे के लिए गाँधीवादी,

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

माक्सवादी, राष्ट्रवादी, लोहियावादी और आंबेडकरवादी विचारधारा से जुड़े ढेरों राजनीतिक व सामाजिक संगठन 'समतामूलक समाज की स्थापना', 'सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति', सामाजिक विषमता का खात्मा' जैसे आकर्षक नारों के साथ वजूद में आये, पर लक्ष्य से दूर रहे। इसका खास कारण यह रहा कि सामाजिक और आर्थिक विषमता की उत्पति का सुस्पष्ट चित्र उनके पास नहीं था। इसलिए वे टुकड़ों-टुकड़ों में शक्ति अर्जन की लड़ाई लड़ते रहे। कोई भूमि में बंटवारे की तो कोई मजदूरी बढ़वाने की; कोई दलितों के लिए तो कोई पिछडों के लिए; कोई मुसलमानों की तो कोई महिलाओं के हितों की लड़ाई लड़ता रहा। आज की तारीख में कोई पिछडों और मुसलमानों को नौकरियों में तो कोई महिलाओं को राजनीति में आरक्षण दिलाने की लड़ाई लड़ रहा है। इनमें किसी के पास भी ऐसा प्रोग्राम नहीं रहा जिससे मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या का मुकम्मल हल; लोकतंत्र का सुदृढीकरण तथा सभी समुदायों का समान सशक्तिकरण किया जा सके। ऐसी स्थिति में ही 15 मार्च 2007 को हम कुछ अम्बेडकरवादी लेखक-एक्टिविस्टों ने मिलकर 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन' की स्थापना किया। चूंकि मिशन से जुड़े लोगों का यह दृढ विश्वास रहा है कि आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी ही मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या है तथा शक्ति के स्रोतों का लोगों के विभिन्न तबकों और महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से ही सारी दुनिया सहित भारत में भी इसकी उत्पत्ति होती रही है, इसलिए ही हमने शक्ति के सभी स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन कराने की कार्य योजना बनाया। ऐसे में मिशन के तरफ से निम्न क्षेत्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन कराने अर्थात विविधतामय भारत के चार सामाजिक समूहों-सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों-के स्त्री-पुरुषों की संख्यानुपात में अवसरों के बंटवारे की निम्न दस सूत्रीय कर्मसूची स्थिर किया गया।

1. सेना व न्यायालयों सहित सरकारी और निजीक्षेत्र की सभी स्तर की, सभी प्रकार की नौकरियों;
2. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा दी जानेवाली सभी वस्तुओं की डीलरशिप;
3. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा की जानेवाली सभी वस्तुओं की खरीदारी;
4. सड़क-भवन निर्माण इत्यादि के ठेकों, पार्किंग, परिवहन;
5. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा चलाये जानेवाले छोटे-बड़े स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, तकनीकि-व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं के संचालन, प्रवेश व अध्यापन;
6. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा अपनी नीतियों, उत्पादित वस्तुओं इत्यादि के विज्ञापन के मद में खर्च की जानेवाली धनराशि;
7. देश-विदेश की संस्थाओं द्वारा गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) को दी जानेवाली धनराशि;
8. प्रिंट व इलेक्ट्रोनिक मिडिया एवं फिल्म-टीवी के सभी प्रभागों;
9. रेल-राष्ट्रीय मार्गों की खाली पड़ी भूमि सहित तमाम सरकारी और मठों की खाली पड़ी जमीन व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए अस्पृश्य-आदिवासियों के मध्य वितरित हो एवं पौरोहित्य में लागू हो विविधता;
10. ग्राम-पंचायत, शहरी निकाय, संसद-विधासभा की सीटों; राज्य एवं केन्द्र की कैबिनेट; विभिन्न मंत्रालयों के कार्यालयों; विधान परिषद-राज्यसभा; राष्ट्रपति, राज्यपाल एवं प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री के कार्यालयों इत्यादि।[20]

आर्थिक और सामाजिक विषमता के खात्मे के लिए बहुजन डाइवर्सिटी मिशन की ओर से जो दस सूत्रीय एजेंडा प्रस्तुत किया गया है, उसमें शक्ति के समस्त स्रोतों का लोगों के विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य वाजिब बंटवारे का निर्भूल सूत्र उभर कर आया है। इसके दस सूत्रीय एजेंडे देश में व्याप्त भीषण आर्थिक विषमता और अन्य कई समस्यायों के निराकरण में कितना प्रभावी हो सकते हैं, इसका जायजा प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ 57-62 तक का अध्ययन करके लिया जा सकता है। इसके अध्ययन के बाद कोई भी इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि देश हित में इतना बेहतरीन सूत्र अबतक सामने नहीं होगा।

डाइवर्सिटी लागू करवाने के लिए : फ्रांस क्रांति का रूप देना होगा

इन्ही सब कारणों से प्राख्यात लेखक डॉ. विजय कुमार त्रिशरण ने लिखा है, 'हमें डाइवर्सिटी सिद्धांत लागू करवाने के लिए इस सम्बंधित आन्दोलन को भारत के 1857 और फ्रांस के 1789 राज क्रांति का रूप देना होगा। बी. डी. एम. का घोषणापत्र बहुजन समाज के उत्थान और उद्धार का एक मंत्र संहिता है।'[21] यह सूत्र कैसे लागू होगा इस पर मार्गदर्शन करते हुए बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के घोषणापत्र में दुसाध जी ने लिखा है-:

'बीडीएम मुख्यतः वर्ण-व्यवस्था के उन वंचितों के मध्य जन जागरण अभियान चलाएगा जो दैविक गुलामी के कारण वीभत्स संतोषबोध का शिकार हैं; जिनमें हिन्दू आरक्षण द्वारा वित्त वासना इस कदर लुप्त कर दी गयी कि उनमें परिवर्तन या प्रगति कि चाह ही मर गयी। वे टाटा-बिड़ला और हेनरी फोर्ड होना तो दूर,

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

छोटा-मोटा उद्योगपति व्यापारी बनने का सपना तक नहीं देखते। ऐसे दासों में मा. कांशीराम के सौजन्य से शासक बनने की भावना तो पैदा हुई पर, उद्योगपति, मीडिया स्वामी या किसी फिल्म स्टूडियो का मालिक बनने की महत्वाकांक्षा नहीं। वित्त वासना शून्य ऐसे लोगों में बीडीएम एल. जॉनसन जैसा उद्योगपति, विलियम रास्पबेरी जैसा पत्रकार, ओपरा विनफ्रे जैसी टीवी एंकर, डेंजिल वाशिंग्टन, विल स्मिथ, हैलेबेरी, हूपी गोल्डबर्ग, जेनिफर हडसन इत्यादि जैसे फिल्म सितारे बनने की भावना जागृत करने में सर्वशक्ति लगाएगा। ऐसे में जब मूलनिवासियों में परिवर्तन और प्रगति; उद्योगपति, सप्लायर, डीलर, ठेकेदार, पत्रकार, फिल्म एक्टर इत्यादि बनने की चाह पैदा होगी तब वोट की लालच में राजनीतिक पार्टियां डाइवर्सिटी को अपने चुनावी मैनिफेस्टो का केन्द्रीय मुद्दा बनाने को बाध्य होंगी; फिर प्रशस्त होगा डाइवर्सिटी का मार्ग। इसी रास्ते आकार लेना शुरू करेगा गौतम बुद्ध, फुले, शाहूजी, पेरियार, डॉ. आंबेडकर और कांशीराम साहब का भारत से आर्थिक विषमता मिटाने का सपना।'[22] चूंकि बीडीएम के एजेंडे को लागू करवाने के लिए इसकी घोषित स्ट्रेटजी बहुजनों में उद्योग- व्यापार में हिस्सेदारी की महत्वाकांक्षा पैदा करने के जरिये राजनीतिक पार्टियों के घोषणापत्रों में डाइवर्सिटी को शामिल करवाने की रही है, इसलिए इसकी ओर से भूरि-भूरि साहित्य सृजन के साथ-साथ देश के विभिन्न अंचलों, विशेषकर हिंदी पट्टी में समय-समय पर सभा-संगोष्ठियों के आयोजन किया जाता रहा है।'[23] फलतः आमजन में तो उतनी नहीं पर, प्रबुद्ध जनों और बहुजनवादी संगठनों में भागीदारी की कुछ-कुछ चाह पनपी और वे अपने-अपने तरह से उद्योग-व्यापार में भागीदारी की मांग उठाने लगे। आज तो सोशल मीडिया पर यह चाह प्रायः शोर में तब्दील होती दिख है। निश्चय ही दुसाध जी और बीडीएम से जुड़े उनके साथियों द्वारा छेड़े गए डाइवर्सिटी जैसे वैचारिक आन्दोलन की यह बड़ी सफलता है।

बहुजन मूव्हमेंट को गति देने में 50% योगदान अकेले दुसाध का

यह एक सचाई है जो फेसबुक पर बहुजन समाज के मशहूर आर्थिक चिन्तकBrijpaal bharti के इस कमेंट में उभरी है -: 'राजाराम जी मुद्दे पर टिपण्णी करें । दुसाध जी के बारे में राय बनाने से पहले बहुजन मूव्हमेंट को समझें! बहुजन मूव्हमेंट को गति देने में 50 प्रतिशत योगदान अकेले दुसाध जी का है। मंचों से घंटों बोलने वालों के मुंह से भागीदारी की हिमायत करने वाले शब्द मुख्यतः दुसाध के ही होते हैं, चाहे वो इसे न स्वीकारें।'[24] बहरहाल दुसाध और उनके साथी लेखकों के प्रयास से बहुजन समाज के जागरूक लोगों में नौकरियों से आगे बढ़कर उद्योग-व्यापार में हिस्सेदारी की जो चाहत पैदा हुई, उसका राजनीतिक दलों पर भी कुछ असर पड़ा और उनके घोषणापत्रों में उसकी झलक भी दिखी। ऐसे में कहा जा सकता है कि दुसाध के नेतृत्व में पार्टियों के घोषणापत्रों में डाइवर्सिटी का एजेंडा शामिल करवाने का बीडीएम का प्रयास खूब व्यर्थ नहीं गया।

राजनीतिक दलों के घोषणापत्रों में डाइवर्सिटी

सबसे पहले भाजपा जैसी पार्टी के घोषणापत्र में डाइवर्सिटी का एजेंडा खुलकर सामने आया। लोकसभा चुनाव-2009 के उसके घोषणापत्र के 29 वें पृष्ठ पर लिखा मिला-'भाजपा सामाजिक न्याय तथा सामाजिक समरसता के प्रति प्रतिबद्ध है। पहचान की राजनीति, जो दलितों अन्य पिछड़े वर्गों और समाज के अन्य वंचित वर्गों को कोई फायदा नहीं पहुचाती का अनुसरण करने बजाय ठोस विकास एवं सशक्तिकरण पर ध्यान केन्द्रित करेगी। हमारे समाज के दलित, पिछड़े एवं वंचित वर्गों के लिए उद्यमशीलता एवं व्यवसाय के अवसरों को इस तरह बढ़ावा दिया जायेगा ताकि भारत की सामाजिक विविधता पर्याप्त रूप से आर्थिक विविधता में प्रतिबिम्बित हो।'[25] सामाजिक विविधता का आर्थिक विविधता में प्रतिबिम्बन खालिस दुसाध की शब्दावली है। 2009 के लोकसभा चुनाव के बाद भाजपा ने 2010 और 2012 में क्रमशः बिहार और उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में जारी अपने घोषणापत्रों में भी डाइवर्सिटी को जगह दिया। भाजपा की भांति ही 2010 के बिहार विधानसभा चुनाव में लोजपा की ओर से डाइवर्सिटी की खुली हिमायत हुई थी। उक्त चुनाव में चूंकि उसका घोषणापत्र राजद के साथ संयुक्त रूप से जारी हुआ था इसलिए घोषणापत्र में तो नहीं, किन्तु रेडियो और टीवी पर जितनी बार भी लोजपा को मतदाताओं को संबोधित करने का अवसर मिला, हर बार उसकी ओर से दोहराया गया-'ठेकेदारी, सप्लाई, वितरण, फिल्म, मीडिया आदि धनार्जन के महत्वपूर्ण अंग हैं। सदियों से व्याप्त आर्थिक और सामाजिक असमानता को खत्म करने के लिए राज्य सरकार नीतिगत फैसला नहीं कर सकी। धनोपार्जन के सभी स्रोतों और संसाधनों में सभी वर्गों को डाइवर्सिटी के आधार पर संख्यानुपात में समान भागीदारी और हिस्सेदारी की जरुरत है। लोजपा इसका समर्थन करती है।'[26] डाइवर्सिटी को सिर्फ कुछेक पार्टियों के घोषणापत्रों में ही जगह नहीं मिली, कुछ सरकारों ने इसे आंशिक रूप से लागू भी किया। इस सिलसिले में बसपा की राष्ट्रीय अध्यक्ष मायावती का महत्वपूर्ण योगदान है। पढ़ें प्रस्तुत पुस्तक में डाइवर्सिटी आन्दोलन का असर उपशीर्षक से छपी पृष्ठ 122 से 124 तक की सामग्री।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

डाइवर्सिटी टाइप मुद्दे के समक्ष भाजपा की हार

2014 में भाजपा के नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में केंद्र में भाजपा की जबरदस्त बहुमत से सरकार बनने के बाद से उद्भ्रांत बहुजनों को मुस्कुराने का अवसर सिर्फ एक बार : बिहार विधानसभा चुनाव- 2015 में ही मिला। इस चुनाव में लालू प्रसाद यादव ने संख्यानुपात में विभिन्न क्षेत्रों में बहुजनों की हिस्सेदारी की मांग उठाकर सामाजिक न्याय की राजनीति को जो नई ऊंचाई दिया, अपराजेय सा दिखने वाले मोदी, उसकी काट पैदा नहीं कर सके और अपने उभार के बाद पहली सबसे बड़ी पराजय झेलने के लिए बाध्य हुए। मई 2014 में केंद्र में मोदी की सरकार बनने के बाद अगस्त 2014 में आयोजित बिहार के उपचुनाव के एक माह पूर्व लालू यादव ने वैशाली में आयोजित राजद के प्रशिक्षण शिविर में यह गर्जना कर -मंडल ही बनेगा, कमंडल की काट—पूरे देश के सामाजिक न्याय के समर्थकों में नए उत्साह का संचार कर दिया। सिर्फ नारा ही नहीं उछाला, उसे जमीनी स्तर पर उतारने के लिए उन्होंने निजी क्षेत्र की नौकरियों सहित ठेकों और विकास की तमाम योजनाओं में एससी/एसटी, ओबीसी और अकलियतों के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण की मांग उठाने के साथ अपने समर्थकों को इसके लिए सड़कों पर उतरने का आह्वान कर डाला था।'[27] उनकी इस घोषणा की अनुगूंज उपचुनाव में सुनाई पड़ी और जब 25 अगस्त, 2014 को उपचुनाव का परिणाम आया, देखा गया कि महागठबंधन भाजपा के 4 के मुकाबले 6 सीटों पर जीत दर्ज कर लिया। लेकिन वह तो बिहार विधानसभा-2015 का छोटा सा रिहर्सल था, असल परिणाम तो 8 नवम्बर, 2015 को आया, जिसने मोदी के करिश्मे पर बड़ा सवाल खड़ा कर दिया। उस चुनाव में लालू प्रसाद यादव ने संघ प्रमुख मोहन भागवत के आरक्षण के समीक्षा सम्बन्धी बयान को आधार बनाकर जब यह-तुम आरक्षण का खात्मा करना चाहते तो लेकिन हम सत्ता में आयेंगे तो संख्यानुपात में आरक्षण बढ़ाएंगे- प्रचारित करना शुरु किया, मोदी और उनके संगी लाख कोशिशें करके भी उसकी काट नहीं ढूंढ पाए। बिहार विधान सभा का चुनाव परिणाम ही वर्तमान भयावह हालात में दुसाध के डाइवर्सिटी सिद्धांत को और प्रासंगिक बना देता देता है।

वर्तमान हालात में दुसाध का चिंतन और प्रासंगिक क्यों!

बिहार विधानसभा चुनाव में मोदी के गहरी शिकस्त खाने के बाद लोगों की निगाहें देश की राजनीति की दिशा तय करने वाले यूपी विधानसभा चुनाव-2017 पर टिक गयीं थीं। तमाम राजनीतिक विश्लेषकों की ही राय थी कि यदि यह चुनाव मोदी हार जाते हैं, तब मान लेना होगा कि उनका करिश्मा खत्म हो चुका है। किन्तु, वैसा नहीं हुआ। मोदी की भाजपा को यूपी के साथ हुए अन्य चार राज्यों में भी अप्रत्याशित सफलता मिली और उनका करिश्मा लोकसभा चुनाव-2014 के बाद 11 मार्च, 2017 को एक बार फिर नए सिरे से स्थापित हो गया। उनकी उस सफलता के बाद तो खुद मोदी-विरोधी कुछ नेताओं तक ने यह कह डाला कि विपक्ष को 2019 की बात भूलकर लोकसभा चुनाव-2024 की तैयारियों में जुट जाना चाहिए। इससे विपक्ष में दहशत की स्थिति पैदा हो गयी। ऐसे में खौफजदा विपक्ष को आश्वस्त करते हुए कई राजनीतिक विश्लेषकों ने 2019 के लिए बिहार मॉडल अपनाने का सुझाव दे डाला। क्या था चुनाव का बिहार मॉडल था।

यह मॉडल था बिखरे विपक्ष का महागठबंधन, जो राजद, जद यू और कांग्रेस के मध्य हुआ था। उस मॉडल से खुद प्रभावित लालू प्रसाद यादव ने यूपी चुनाव में सपा बसपा को साथ आने का आह्वान किया था, जो सफल नहीं हो सका। किन्तु बिहार मॉडल की सफलता तीन बड़े दलों के मेल की सफलता जरुर थी पर, सर्वोपरि वह सामाजिक न्याय की सफलता थी। अगर लालू प्रसाद यादव ने मौका माहौल देखकर 'मंडल बनाम कमंडल'; 'निजी क्षेत्र और ठेकों सहित विकास की तमाम योजनाओं में एससी/एसटी, पिछड़ों के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण' और ' संख्यानुपात में हर क्षेत्र में आरक्षण' जैसे मुद्दे नहीं उठाये होते तो तीन बड़े विपक्षी दलों का महागठबंधन बिहार विधानसभा चुनाव में अपेक्षित परिणाम दे पाता, इस पर हर किसी को संदेह है। इसलिए 2019 चुनाव को ध्यान में रखकर जो महागठबंधन तैयार होने जा रहा है, तमाम बहुजन बुद्धिजीवी उसके लिए सामाजिक न्याय का मुद्दा उठाने के लिए अभी से सुझाव दिए जा रहे हैं। और ऐसा इसलिए कि प्रायः शत प्रतिशत बहुजन बुद्धिजीवी ही यह मानते हैं कि सिर्फ और सिर्फ सामाजिक न्याय के पिच पर ही भाजपा को मात दिया जा सकता है, यह बिहार विधानसभा चुनाव ने प्रमाणित कर दिया है। बहरहाल अगर सामाजिक न्याय के मुद्दे पर भाजपा को मात दिया जा सकता है तो क्या शक्ति के स्रोतों का भारत के प्रमुख सामाजिक समूहों—सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों—के मध्य न्यायोचित बंटवारे सूत्र देने वाले बीडीएम के दस सूत्रीय एजेंडे से भी बेहतर कुछ हो सकता है? शायद नहीं!

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

भाजपा को शिकस्त देना पहले से कठिन!

खैर! अगर आज के दौर को भयावह बनाने वाली भाजपा को 2019 में रोकने लिए विपक्ष महागठबंधन के निर्माण के साथ बिहार विधानसभा चुनाव की भांति सामाजिक न्याय का मुद्दा स्थिर करता है तो भी 11 मार्च, 2017 के बाद जो हालात बनें हैं, उसमें भाजपा को शिकस्त देना पहले के मुकाबले दो कारणों से बहुत कठिन हो गया है। इस विषय में पूर्व पंक्तियों में बताया गया है कि भाजपा सदियों से शक्ति के स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा जमाये विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न वर्ग को और संपन्न तथा मूलनिवासियों को पूरी तरह शक्तिहीन करने की सुपरिकल्पित योजना के तहत जहां एक ओर आरक्षण के खात्मे की कार्ययोजना पर काम कर रही है वहीं उसने आरक्षित वर्गों की एकता को पूरी तरह ध्वस्त करने के कुत्सित इरादे से आरक्षण के वर्गीकरण अर्थात बंदरबांट के मोर्चे पर पूरी तरह मुस्तैद हो गयी है। फिलहाल तो यह प्रयोग ओबीसी पर हो रहा है पर, बाद में इसके दायरे में एससी/एसटी का आरक्षण भी आना तय है।

सावधान! मोदी को सामाजिक न्याय का नया मसीहा बनाने कि तैयारी चल रही है

ऐसा करने के फलस्वरूप चिरकाल से अभावों में रहे आरक्षित वर्ग के लोग, अपने नाममात्र के फायदे को देखते हुए मोदी को सामाजिक न्याय का नया मसीहा मानने लग सकते हैं, जो कि भाजपा की योजना है। जी हां चरम सामाजिक न्याय विरोधी भाजपा की योजना आरक्षण के पूरी तरह खात्मे के साथ ही, मोदी की छवि को सामाजिक न्याय के नए मसीहा का रूप देना है, ऐसा लक्षण दिखने लगे हैं और जिस तरह देश की प्रायः सम्पूर्ण मीडिया, साधु-संत और सवर्ण लेखक-विद्वान भाजपा के साथ हो लिए हैं, उससे मुमकिन है कि बहुजन समाज की आरक्षण से कम लाभान्वित जातियां , मोदी को मसीहा मानने भी लगे। अगर ऐसा होता है तब तो सामाजिक न्याय का बिहार जैसा मुद्दा बेअसर हो जायेगा। ऐसे में आज सबसे बड़ी जरुरत आरक्षित वर्गों की टूटी-फूटी एकता को बचाए रखना है। और अगर इमानदारी से विचार किया जाय तो बहुजन एकता के लिए बीडीएम के दस सूत्रीय एजेंडे से बढ़कर कोई कार्यक्रम अबतक सामने आया ही नहीं है। एकता के इस मंत्र से विस्तार से अवगत कराने का काम दुसाध जी ने एक दशक पूर्व ही कर दिया था ।उन्होंने ऐतिहासिक बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का घोषणापत्र के 'राष्ट्रहित में डाइवर्सिटी' नामक तीसरे अध्याय में निम्न शीर्षक से बहुजन एकता की सम्भावना पर प्रकाश डालते हुए लिखा था -:

बहुजन समाज बनाने के लिए : इस बात को बार-बार दोहराना विरक्ति पैदा करेगी फिर भी कहना पड़ रहा है कि इस देश की संपदा-संसाधनों पर चिरस्थाई कब्जा कायम रखने के लिए ही हिन्दू साम्राज्यवादियों ने हिन्दू-धर्म उर्फ वर्ण-धर्म के रास्ते वर्ण-व्यवस्था की स्थापना की; मूलनिवासी कभी संगठित होकर संपदा-संसाधनों पर पुनः कब्जा न जमा लें इसलिए ही उन्होंने इसमें सामाजिक विच्छिन्नता के सूत्रों को इस तरह पिरोया कि मूलनिवासी 6000 कलहरत समाजों में बंट कर रह गये; विशाल वंचित समाज में तब्दील न हो सके। हिन्दू मनीषियों द्वारा खड़ी की गई इस समस्या ने बौद्धोत्तर भारत में पहली बार गहराई से उद्वेलित किया सामाजिक परिवर्तन के पितामह फुले को। उन्होंने कलहरत जातियों को भ्रातृत्व के बन्धन में पिरोने के लिए इतिहास को मथ कर 'मूलनिवासीवाद' का मंत्र दिया। इस मंत्र को व्यावहारिक रूप दिया पहली बार पेरियार ने। उन्होंने मूलनिवासीवाद का शंखनाद कर दक्षिण भारत में हिन्दू साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंका। परवर्तीकाल में इस मंत्र का और प्रभावी प्रयोग मा. कांशीराम ने किया। वे इस मंत्र का प्रयोग कर भारत के इतिहास में भ्रातृत्व के सबसे बड़े प्रसारक बन गये। उनके मूलनिवासीवाद से पहली बार शत्रुता से लबरेज 6000 जातियां शत्रुता की दीवार लांघकर भ्रातृत्व भाव लिये बहुजन समाज में तब्दील होना शुरू हुईं। इससे जमीनी स्तर पर हिन्दू साम्राज्यवादियों का सत्ता में दखल कम हुआ। पर, बहुजन समाज बनाने में बेहद कारगर मूलनिवासीवाद अब पहले जैसा प्रभावी नहीं हो रहा है। इसका मतलब बहुजन समाज बनाने का अब और कोई आधार नहीं रहा? ज्योतिबा फुले ने 'मूलनिवासीवाद' के साथ एक और विचार 'आरक्षण' का दिया था। लोग समझते हैं आरक्षण सिर्फ वर्ण-व्यवस्था के वंचितों को आर्थिक अवसर पैदा करने का यंत्र है। इसका आर्थिक असर तो है ही लेकिन उससे भी बढ़कर यह वंचितों को जोड़ता है।

दरअसल आरक्षण सदियों की शोषित जातियों को संगठित करता है, यह सत्य समाजशास्त्रियों की दृष्टि से अगोचर ही रहा है। आरक्षण किस तरह जन्मजात शोषितों को जोड़ता है, यह असंख्य भांगों में बंटी अनुसूचित जाति/जनजातियों के मनोविज्ञान के आधार पर समझ लेना चाहिए था। देश के आरक्षित वर्ग, विशेषकर अनुसूचित जातियां हिन्दुओं द्वारा घृणित व्यवहार पाने के अभ्यस्त होकर भी, हिन्दू शास्त्रों में आस्था के कारण अपने से कथित निम्न अवस्थान में पड़ी जातियों से हिन्दुओं की भांति ही घृणा करती हैं। अस्पृश्य रूप में गण्य दूसरी जातियों से रोटी-बेटी का संबंध स्थापित करने में हिन्दुओं की भांति ही गुरेज करती हैं। लेकिन यही कलहरत अछूत जातियां जब तब आरक्षण के सवाल पर संगठित होकर विशाल दलित समाज में तब्दील हो जाती हैं। पर, वंचितों को एकीकृत करने में आरक्षण की जिस प्रभावकारिता से भारत के समाजशास्त्री अनजान रहे, उसने मण्डल की

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

रपट प्रकाशित होने के बाद अपना रंग दिखाया। दलित-पिछड़ों की एकता और उनके जाति चेतना के राजनीतिकरण का लम्बवत् विकास हुआ, जिससे आर्यावर्त की राजनीति में काफी हद तक क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। अर्थात् हिन्दू साम्राज्यवादी सत्ता की पकड़ काफी हद तक ढीली हुई।

बहरहाल मण्डल के माध्यम से आरक्षण के विस्तारलाभ और उसके विस्तार में मूलनिवासी दलित-पिछड़ों की एकता की संभावना देखकर ही मण्डल की सिफारिशों की घोषणा के साथ संघ परिवार (हिन्दू साम्राज्यवादियों का मुख्य संगठन) ने मोर्चा संभाल लिया। उसने रणनीति के तौर पर इस्तेमाल किया धर्म का वह अमोघ अस्त्र, जिससे घायल होकर सदियों से दलित-पिछड़े एक-दूसरे के शत्रु; नर-पशु व मानवेतर बने रहे हैं। हां, उसने मुस्लिम विद्वेष का भी प्रसार समान रूप से किया और दुनिया जानती है कि यह टोटका कई हजार समाजों में बटे हिंदुओं को कुछ समय के लिए एकीकृत करने में बड़ा असरकारी होता है। इन फॉर्मूलों से बहुजनों की जातीय चेतना का मुकाबला धार्मिक चेतना के राजनीतिकरण से करने में सफलता मिल गई। इस सफलता से उत्साहित होकर संघ परिवार आने वाले कई सालों तक इसी फॉर्मूले पर काम करने का मन बना चुका है। यह बात और है कि इस फॉर्मूले के कारण अब तक कई हजार करोड़ की संपदा और असंख्य लोगों की प्राणहानि हो चुकी है। लेकिन आरक्षण के खात्मे के लिए संघ परिवार एक ही फॉर्मूले पर निर्भर नहीं रहा। इस फॉर्मूले से मिली सत्ता का लाभ उठाकर स्वयंसेवकों ने देश की सुरक्षा तक से जुड़े सार्वजनिक उपक्रर्मों को बेचना शुरू कर दिया। राष्ट्रवादी स्वयंसेवकों की भांति ही सवर्णों की बी टीम गांधीवादी कांग्रेस आज बहुत चालाकी से उसी रास्ते का अनुगमन कर रही है। हालांकि सवर्णों की 'ए' और 'बी' टीमों को अच्छी तरह मालूम है कि उनकी आर्थिक नीतियों के कारण देश आर्थिक रूप से विदेशियों का गुलाम हो जाएगा। फिर भी अपनी नीतियों पर दृढ़ रहे या हैं तो इसलिए कि इससे आरक्षण असरहीन हो जाएगा। अर्थात् बहुजन समाज की एकता का अन्यतम् आधार ही कमजोर पड़ने लगेगा।

बहुजनों में एकता स्थापित करने में आरक्षण सक्षम है, यह तथ्य न समझ पाने के लिए समाजशास्त्रियों पर करुणा होनी चाहिए। एकता स्थापित करने में आरक्षण सक्षम है यह तो मंडलोत्तर भारत की परिस्थितियों ने आंख में अंगुली करके दिखा दिया, इससे भी बड़ा आधार यह है कि हिंदू साम्राज्यवादियों की आधुनिक पीढ़ी पूना पैक्ट के जमाने से ही यह कहकर आरक्षण का विरोध करती रही है कि आरक्षण से समाज टूटता है। जिनकी स्मरण शक्ति कमजोर है वे 8 अप्रैल 2006 को मानव संसाधन विकास मंत्री द्वारा आईआईएम और आईआईटी में प्रस्तावित आरक्षण के बाद उद्भव हुए मंडल-2 पर सवर्णों की प्रतिक्रिया को याद करें। सवर्णों के बच्चों ने मंडल-2 में नए प्रस्तावित आरक्षण का विरोध मेरिट के आधार पर तो किया ही, साथ ही बार-बार कहा कि इससे समाज बंटेगा। चूंकि हिंदू साम्राज्यवादी और मूलनिवासी दो विपरीत ध्रुव हैं इसलिए इनके द्वारा एक-दूसरे पर की गई प्रतिक्रिया के विलोम अर्थ में ही सच्चाई को पाया जा सकता है। जो चीज इनमें एक के लिए जहर है वही दूसरों के लिए अमृत। इसलिए अगर हिंदू कहते हैं कि आरक्षण से समाज टूटता है तो इसका मतलब सही में यह हुआ कि इससे मूलनिवासी समाज जुड़ता है।

यह भी गौर करने की बात है कि जिन हिंदुओं का देश की संपदा-संसाधनों पर प्रायः 80 से 85% प्रभुत्व है वे नौकरियों में आरक्षण का विरोध कर क्यों विवेकशून्य मनुष्य प्राणी कहलाने का आरोप मोल लेने जाएंगे। इसका कारण सिर्फ यही है कि आरक्षण से असंख्य भागों में बंटे मूलनिवासी एक-दूसरे के करीब आते हैं और दलित आदिवासी और पिछड़े एक वर्ग, आरक्षित वर्ग में तब्दील होते हैं। इसलिए इस एकता के आधार को खत्म करने के लिए ही हिंदू शासक पार्टियां औने-पौने दामों में सरकारी उपक्रमों को बेच रही हैं।

बहरहाल आरक्षण क्यों मूलनिवासियों को जोड़ता है, यह सवाल पाठकों के मन में आ सकता है। इसका कारण सार्वदेशिक है और वह यह है कि विभिन्न विरोधी समुदाय के लोगों का संघ तभी बनता है जब उस संघ का ऐसा कोई कॉमन एजेंडा हो जो उसमें शामिल सभी समुदायों के लोगों का कुछ न कुछ स्वार्थ रक्षा करता हो। जिस संघ में विभिन्न रुचि के लोगों को संतुष्ट करने लायक जितना प्रभावी एजेंडा होता है वह संघ उतना ही दीर्घायु व विस्तारित होता है। इस लिहाज से शत्रुता से लबरेज मूलनिवासियों के कामन इंटरेस्ट की रक्षा करने वाला अब तक का सबसे प्रभावी एजेंडा आरक्षण रहा है। और जब मात्र नौकरियों में हिस्सेदारी दिलाने वाला आंबेडकरी आरक्षण कलहरत मूलनिवासियों को जोड़ सकता है तो सर्वत्र आरक्षण या हिस्सेदारी सुलभ कराने वाली डाइवर्सिटी लोगों को जोड़ने के मोर्चे पर क्या कमाल दिखा सकती है इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है।

इस पुस्तक में नौकरियों, डीलरशीप, सप्लाई, ठेकों, फिल्म. टी.वी. प्रिन्ट व इलेक्टानिक मीडिया इत्यादि में डाइवर्सिटी का जो आयाम दिखाया है उससे स्पष्ट है कि मूलनिवासियों की आर्थिक भागीदारी व विकास का जो सूत्र डावर्सिटी में दिया गया है वैसा व्यापक बदलाव का कार्यक्रम इनके लिए आज तक नहीं आया है। अतः भूमंडलीकरण के युग में जो आरक्षण लगभग निष्प्रभावी हो गया है उसे बचाने के लिए अगर आरक्षित वर्ग एकजुट होकर जान देने को तैयार है तब अगर हर क्षेत्र में ही आरक्षण अर्थात् भागीदारी का मार्ग प्रशस्त करने वाली डाइवर्सिटी का प्रस्ताव रखा जाय तो वह निश्चय ही आपसी शत्रुता भुलाकर, भ्रातृत्व भाव लिए बहुजन में तब्दील होगा। सर्वव्यापी आरक्षण वाली डाइवर्सिटी दलित पिछड़ों ही नहीं अल्पसंख्यक को भी करीब लाकर विशाल बहुजन समाज से जोड़ देगी।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

वैसे भी 15 प्रतिशत हिन्दू साम्राज्यवादियों के कब्जे से डाइवर्सिटी के रास्ते सम्पदा-संसाधनों में हिस्सेदारी पाने की पूर्व शर्त ही है कि वंचितों को आपसी भेदभाव भूलकर बन्धुतापूर्ण बहुजन समाज में तब्दील होना होगा। विच्छिन्न रह कर वंचित बहुजन शक्तिशाली साम्राज्यवादियों से कुछ भी हासिल नहीं कर सकते।

बहुजन समाज बनाने के मोर्चे पर 'डाइवर्सिटी' अब तक इसलिए अपेक्षित परिणाम नहीं दिखा पाई कि इसके प्रचार-प्रसार में महज अंगुलियों पर गिने जाने लायक चन्द दलित बुद्धिजीवी ही लगे रहे हैं। बहुजन समाज के अधिकांश लेखक-बुद्धिजीवी, सामाजिक कार्यकर्त्ता या तो चुपचाप तमाशा देखते रहे या डाइवर्सिटी अभियान चलाने वालों की आलोचना करते रहे।[28]

इसमे कोई शक नहीं कि बहुजन नेतृत्व यदि एससी/एसटी/ओबीसी और इनसे धर्मातरित लोगों को खत्म होती नौकरियों की जगह सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, फिल्म-टीवी इत्यादि हर क्षेत्र में संख्यानुपात में भागीदारी दिलाने की बात शिद्दत करे तो, आरक्षण के वर्गीकरण के जरिये मोदी को सामाजिक न्याय का न्याय मसीहा बनाने तथा समाज को बाँटने के संघ के मंसूबों पर शर्तिया तौर पर पानी फिर जायेगा। क्योंकि नाममात्र की नौकरियों की जगह उद्योग-व्यापार, फिल्म-मीडिया इत्यादि शक्ति के तमाम स्रोतों में हिस्सेदारी जैसे बड़े लक्ष्य को हासिल करने के लिए वंचित बहुजन संगठित हो सकते हैं। बहरहाल पांच राज्यों के चुनाव के बाद भाजपा जहां एक ओर आरक्षण के वर्गीकरण के जरिये पहले से कमजोर बहुजन एकता को खंड-खंड कर खुद की स्थिति और सुरक्षित करने जा रही, वहीं अपनी शक्ति में इतना विस्तार कर ली है, जिसकी कल्पना कर विपक्ष के पसीने छूट जाएँ। इस विषय में दुसाध ने बेहतर जानकारी सुलभ कराया है।

भाजपा की शक्ति के स्रोत

उन्होंने बताया है, 'यह तय सा दिख रहा है कि भाजपा को रोकने के लिए भविष्य में न सिर्फ राजनीतिक दलों, बल्कि बुद्धिजीवियों का भी मोर्चा वजूद में आयेगा। ऐसे में जिस भाजपा के पास विश्व में सर्वाधिक, 10 करोड़ से ज्यादे सदस्य हैं य13 राज्यों में खुद की एवं 4 राज्यों में गठबंधन की सरकार चला रही जो भाजपा 1489 विधायकों तथा 283 सांसदों की संखाबल से समृद्ध है, उसके शक्ति के स्रोतों की सटीक जानकारी विपक्ष के लिए बहुत जरुरी है। अब जहाँ तक भाजपा की शक्ति के स्रोतों का प्रश्न है, हरि अनंत हरि कथा अनंता की तरह इसकी शक्ति के स्रोतों का भी अंत पाना आसान नहीं है। फिर भी इसके दस ऐसे प्रमुख स्रोतों को चिन्हित किया जा सकता है, जिसके बूते वह आज की तारीख में भारत के चप्पे-चप्पे पर कब्जा जमाने की संभावना उजागर कर दी है। बहरहाल 1925 की विजयादशमी को आधुनिक भारत के सर्वाधिक दूरदर्शी ब्राह्मण नेता डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार द्बारा स्थापित राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही भाजपा की शक्ति का प्रमुख स्रोत है, इस बात से शायद ही किसी की असहमति हो। अपने किस्म के विश्व के इकलौते संगठन आरएसएस के भारतीय मजदूर संघ, सेवा भारती, राष्ट्रीय सेविका समिति, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, विश्व हिन्दू परिषद, स्वदेशी जागरण मंच, सरस्वती शिशु मंदिर, विद्या भारती, वनवासी कल्याण आश्रम, मुस्लिम राष्ट्रीय मंच, बजरंग दल, अनुसूचित जाति आरक्षण बचाओ परिषद, लघु उद्योग भारती, भारतीय विचार केंद्र , विश्व संवाद केंद्र, राष्ट्रीय सिख संगठन, विवेकानंद केंद्र और खुद भारतीय जनता पार्टी सहित दो दर्जन से अधिक आनुषांगिक संगठन हैं, जिनके साथ 28 हजार, 500 विद्यामंदिर, 2 लाख, 80 हजार आचार्य, 48 लाख, 59 हजार छात्र, 83 लाख, 18 हजार, 348 मजदूर, 595 प्रकाशन समूह, 1 लाख पूर्व सैनिक, 6 लाख, 85 हजार वीएचपी—बजरंग दल के सदस्य जुड़े हुए हैं। यही नहीं इसके साथ बेहद समर्पित व इमानदार 4 हजार पूर्णकालिक कार्यकर्तृता हैं, जो देश भर में फैले 56 हजार, 859 शाखाओं में कार्यरत 55 लाख, 20 हजार स्वयंसेवकों के साथ मिलकर इसके राजनीतिक संगठन भारतीय जनता पार्टी को बल प्रदान करते हैं।'[29] इसके अतिरिक्त देश भर के हिन्दू लेखकों, मीडिया (प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक), साधु-संत, धन्नासेठों और सवर्ण मतदाताओं का प्रायः 90 प्रतिशत हिस्सा भाजपा के ही साथ है।'[30] लेकिन अपराजेय दिख रही महाशक्तिशाली भाजपा को 2019 में हराया जा सकता है, इसका बेहतर उपाय दुसाध जी ने ही बताया है। इस विषय में उन्होंने हाल के दिनों में कई अखबारों में लेख लिखकर समाज का मार्गदर्शन किया है।

बहुजनवादी दलों की शक्ति का स्रोत : सामाजिक अन्याय का शिकार विशालतम आबादी

उन्होंने लिखा है, 'गत दिनों इसी अखबार में भाजपा की शक्ति के स्रोतों पर आलोकपात करते हुए मैंने बताया था कि दुनिया के विरल व विराट संगठन, आरएसएस के अतिरिक्त देश भर के लेखकों, मीडिया (प्रिंट-इलेक्ट्रॉनिक), साधु-संतों, सवर्ण मतदाताओं का 90 प्रतिशत हिस्सा भी उसे शक्ति प्रदान करता है। शक्ति के इन स्रोतों को सौ के बराबर अकेला करिश्माई नरेंद्र मोदी सैलाब में परिणत कर भाजपा को अप्रतिरोध्य बना दिए हैं। भाजपा के शक्ति के स्रोतों का अपार भंडार देखकर

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

ऐसा लग सकता है कि बहुजनवादी दल अप्रिरोध्य भाजपा के समक्ष बिलकुल असहाय हैं। न तो इनके पास संघ के मुकाबले दस प्रतिशत की भी हैसियत रखने वाला कोई सामाजिक संगठन है , और न ही धनपतियों, मीडिया, लेखकों का न्यूनतम समर्थन ही प्राप्त है। मोदी जैसे करिश्माई नेता की बहुजनवादी दलों तो क्या, दूसरे सवर्णवादी गैर-भाजपाई दलों तक में भी कल्पना करना दुष्कर है। पर, यदि हम इस बात को ध्यान में रखें कि लोकतान्त्रिक व्यवस्था में सत्ता हासिल करने में संख्याबल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण फैक्टर का काम करता और इसी संख्या-बल को ही अपने अनुकूल करने के लिए पार्टियों को धन-बल, मीडिया-बल, प्रवक्ताओं -कार्यकर्ताओं की भीड़ और कुशल नेतृत्व की जरुरत पड़ती है तो पता चलेगा भारत के बहुजनवादी दलों जैसी अनुकूल स्थिति पूरी दुनिया में अन्यत्र दुर्लभ है। और ऐसा इसलिए है क्योंकि आज की तारीख में सदियों से सामाजिक अन्याय का शिकार बनाई गयी भारत के बहुजन समाज जैसी विपुल आबादी दुनिया में कहीं है ही नहीं।'[31] सामाजिक अन्याय के विषय में दुसाध कहते हैं, 'वैसे तो सामाजिक अन्याय की कोई निर्दिष्ट परिभाषा नहीं है किन्तु, विभिन्न समाज विज्ञानियों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि नस्ल, जाति, लिंग, धर्म, भाषा, क्षेत्रादि के आधार पर विभाजित समाज के विभिन्न सामाजिक समूहों में से कुछेक का शासकों द्वारा शक्ति के स्रोतों से जबरन बहिष्कार ही सामाजिक अन्याय का कहलाता है। इस लिहाज से दुनिया में स्त्री के रूप में विद्यमान आधी आबादी सर्वत्र ही सामाजिक अन्याय का शिकार रही। सर्वाधिक अन्याय के शिकार समुदायों में अमेरिका और दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत तथा भारत के बहुजन रहे हैं। इनमें भारत के बहुजनों को ही शीर्ष पर रखा जा सकता है।'[32]

बहुजनों की सापेक्षिक वंचना : भाजपा के खिलाफ साबित हो सकती है बारूद का ढेर!

दुसाध जी ने बताया है कि सदियों पूर्व सामाजिक अन्याय का शिकार बनायी गयीं तमाम कौमें, इससे निजात पा चुकी हैं, अपवाद हैं तो भारत की मूलनिवासी जातियां। इस प्रसंग में वह लिखते हैं-'कुल मिलाकर उपरोक्त तथ्य यह गवाही देते हैं कि आधुनिक विश्व में भी सर्वाधिक अन्याय की शिकार विशालतम आबादी की उपस्थिति भारत में ही है। यह आबादी इस अन्याय से निकलने के लिए बुरी तरह छटपटा रही है। भारत में सामाजिक अन्याय की शिकार विश्व की विशालतम आबादी को जिस तरह विषमता का शिकार होकर जीना पड़ रहा है, उससे भारत में विशिष्ट क्रन्तिकारी आन्दोलन पनपने की 'निश्चित दशाएं' साफ दृष्टिगोचर होने लगीं हैं। समाज विज्ञानियों के मुताबिक क्रांतिकारी आन्दोलन मुख्यतः असंतोष, अन्याय, उत्पादन के साधनों का असमान बंटवारा तथा उच्च व निम्न वर्ग के मध्य व्याप्त खाई के फलस्वरूप होता है। सरल शब्दों में ऐसे आन्दोलन आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी की कोख से जन्म लेते हैं और तमाम अध्ययन साबित करते हैं कि भारत जैसी भीषण गैर-बराबरी पूरे विश्व में कहीं है ही नहीं। इस क्रान्तिकारी आन्दोलन में बहुजनों में पनपता 'सापेक्षिक वंचना' का भाव आग में घी का काम करता है, जो वर्तमान भारत में दिख रहा है।

क्रांति का अध्ययन करने वाले तमाम समाज विज्ञानियों के मुताबिक जब समाज में सापेक्षिक वंचना का भाव पनपने लगता है, तब आन्दोलन की चिंगारी फूट पड़ती है। समाज विज्ञानियों के मुताबिक, 'दूसरे लोगों और समूहों के संदर्भ में जब कोई समूह या व्यक्ति किसी वस्तु से वंचित हो जाता है तो वह सापेक्षिक वंचना है। दूसरे शब्दों में जब दूसरे वंचित नहीं हैं, तब हम क्यों रहें!' जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हजारों साल के विशेषाधिकारयुक्त व सुविधासंपन्न सवर्णों के शक्ति के तमाम स्रोतों पर ही 80-85 प्रतिशत कब्जे ने बहुजनों में सापेक्षिक वंचना के अहसास को प्रायः तुंग पर पहुंचा दिया है। और इतिहास गवाह है जब बहुसंख्य लोगों में यह भाव पनप जाता है , क्रांतिकारी आन्दोलन भड़कने में देर नहीं लगती। सापेक्षिक वंचना का भाव क्रान्तिकारी आन्दोलन की एक और शर्त पूरी करता दिख रहा है और वह है 'हम-भावना' का तीव्र विकास। कॉमन वंचना ने बहुजनों को शक्तिसंपन्न वर्गों के विरुद्ध 'हम-भावना' से लैस करना शुरू कर दिया है। इस भयावह विषमता का सदव्यवहार कर बहुजन साहित्यकार विशिष्ट आन्दोलन लायक हालत बनाने में जुट गए हैं। बहरहाल आज भारत में विशिष्ट क्रांतिकारी आन्दोलन के उभार की प्रायः सारी स्थितियां और परिस्थितियां तैयार हैं । लेकिन ऐसे आंदोलनों के लिए जरुरत होती है एक योग्य नेतृत्व की, जो आन्दोलन के लिए पूंजीभूत हुईं आदर्श स्थितयों का सद्व्यवहार कर सके, जिससे कि सम्पदा-संसाधनों और अवसरों के न्यायोचित बंटवारे का मार्ग प्रशस्त हो। बहुजनों का दुर्भाग्य है कि अवसरों के सदव्यवहार लायक इस समय कोई उपयुक्त नेतृत्व नहीं है। नेतृत्व की इन्ही कमियों का लाभ उठाकर भाजपा ने बैलेट बॉक्स के जरिये एक प्रतिक्रान्ति कर दी है। लेकिन बहुजन नेतृत्व यदि खुद को इन अनुकूल स्थितियों के सद्व्यवहार के लिए तैयार कर ले, जो खूब असंभव भी नहीं है, तो बैलेट बॉक्स के जरिये भारत में क्रांति बहुत आसानी से घटित हो सकती है, अर्थात भाजपा बहुजनवादी दलों के समक्ष पराजित हो सकती है।'[33]

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

सापेक्षिक वंचना के सद्व्यवहार के लिए : डाइवर्सिटी

इसमें कोई शक नहीं कि जिस तरह 'प्राचीन विशेषाधिकारयुक्त तबके का सदियों से ही शक्ति के स्रोतों पर प्रायः सम्पूर्ण एकाधिकार रहा और आज भी उनका उद्योग-व्यापार, शासन-प्रशासन, शैक्षिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा है तथा जो 15-20 प्रतिशत अवसर वंचितों को सुलभ हैं, उन्हें भी जिस तरह मोदी सरकार अपनी आर्थिक नीतियों के जरिये शक्तिशाली तबकों के हिस्से में डालने में सर्वशक्ति लगा रही है,[34] उसका हवाला देकर सापेक्षिक वंचना (Relative deprivation) के अहसास को तुंग पर पहुँचाया जा सकता है। लेकिन इस वंचना का सद्व्यवहार तभी हो सकता जब विपक्ष विशाल वंचित आबादी के समक्ष वैसी कर्मसूची रखे , जिससे उन्हें लगे कि इसके जरिये वे भी परम्परागत व विशेषाधिकार की भांति शक्ति के समस्त स्रोतों को भोग करने की स्थिति में आ सकते हैं। और इसमें कोई दो मत नहीं ऐसी कर्मसूची सिर्फ और सिर्फ एच. एल. दुसाध द्वारा संचालित बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के दस सूत्रीय एजेंडे में ही है।

× × ×

हम संपादक द्वय ने एच. एल. दुसाध के व्यक्ति और कृतित्व को सामने लाने का एक छोटा सा प्रयास किया है। हम चाहेंगे कि पाठक उनको और बेहतर रूप में समझने के लिए इस पुस्तक में छपे सुधीन्द्र कुलकर्णी, अभिजित कुमार, दिलीप मंडल और डॉ. राज बहादुर मौर्य के लेख मनोयोगपूर्वक एकाधिक बार पढ़ें। दुसाध के विषय में एक खास बात हम यह कहना चाहते हैं कि वह बेसिकली प्रत्रकार हैं और पत्रकार के रूप में जितने विषयों पर, जिस अधिकार से वह लेखन करते हैं, शायद उसकी मिसाल भारतीय पत्रकारिता के इतिहास दूजी नहीं मिल सकती। प्रोफेसर विवेक कुमार के शब्दों में विविध विषयों पर दुसाध किसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर की भांति टिपण्णी करते ही हैं , उनकी बड़ी खासियत तो यह भी है कि वह धर्म- ईश्वर, राजनीति की संस्थाओं और सत्ता के खिलाफ जिस बेबाकी और साहस से टिपण्णी करते हैं, उसका दर्शन अन्य लेखकों में मिलना मुश्किल है। इन्हीं सब कारणों से उनके चाहने वालों में कुछ लोग उन्हें मिनी आंबेडकर कहते है तो कुछ ज्ञानपीठ और नोबेल पुरस्कार के काबिल घोषित करते हैं। और Mukesh Kumar जैसे फेसबुक पर सक्रिय उनके कद्रदानों को इन शब्दों में हौसला अफजाई में द्विधा नहीं होती-'यदि आपके नाम के साथ दुसाध के बजाय आप एचएल मिश्रा, एचएल पाण्डे या एच.एल. चौहान होता तो आप के लिए एमपी राज्यसभा, पद्मश्री, यश भारती, यहाँ तक कि भारत रत्न की भी घोषणा हो जाती। लेकिन दुसाध जी आप दलित आइकॉन हो, 37 करोड़ दलित आपके साथ हैं, यह किसी भी अवार्ड से ज्यादा है।' इसमें कोई शक नहीं कि दुसाध जी ने समाज पर गहरी छाप छोड़ी है, तभी तो आंबेडकर महासभा, लखनऊ के राष्ट्रीय अध्यक्ष Lalajee Nirmal कहते हैं कि जब दिलीप मंडल, उर्मिलेश, प्रो. विवेक कुमार, चंद्रभान प्रसाद, प्रो कंचा इलैया और प्रो चौथीराम इत्यादि के साथ एच.एल. दुसाध जैसे लोग उच्च सदन में दिखाई पड़ेंगे, तब राजनीति मिशन का रूप लेगी।' उनके चिंतन में बहुजनों की समृद्धि का मार्ग छिपा है, यह सोच कर ही विपिन बिहारी ने उनके डाइवर्सिटी मिशन पर बड़ा उपन्याय लिख डाला। इस कारण ही Arvind kumar chakrvarty जैसे एक्टिविस्ट गर्व से कहते है,' सर आपके जैसे अभिभावक जिस देश समाज, जिस परिवार में हो, वो तो वैसे ही धन्य हो जाता है। आप जैसे महान व्यक्ति की वजह से ही मुझ जैसों को कुछ करने की प्रेरणा मिलती है।' बहरहाल इस किताब को तैयार करने के दौरान हमें दो बातें खासतौर से खटकीं।

पहली, मीडिया जगत में दुसाध की उपेक्षा, जिसकी सन 2005 में ही संकेत करते हुए प्रो. विवेक कुमार ने लिखा था, 'यदपि दुसाध जर्नलिस्ट हैं, फिर भी वे अपने लेखों में किसी भी विशेषज्ञ की भांति ही विषय की बारीकियों को विश्लेषित हैं। क्या दुसाध के लिए कोई समाचार पत्र जगह बनाएगा?' जाहिर है प्रिंट मीडिया में उनकी उपेक्षा को देखकर ही उन्होंने टिपण्णी किया था। आज के जमाने में कुकुरमुत्तों की भांति ढेरों टीवी चौनल उग आये हैं। लेकिन किसी चैनल पर दुसाध नहीं दिखाई पड़ते। जबकि उनके जैसे बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति को हर दो-चार दिन पर वहां दिखना चाहिए। चैनलों की भी भांति ही शैक्षणिक जगत में दुसाध की उपेक्षा अखरती है। हमने महज ग्यारह क्लास पास दुसाध को अपने कॉलेज में एकाधिक बार विचार रखने के लिए आमंत्रित किया और खुद कई विश्वविद्यालयों में उनका संबोधन सुना है। हमने उनका विचार सुनकर अक्सर बड़े -बड़े प्रोफेसरों तक को हैरान होते देखा है। किन्तु जिस दुसाध ने डाइवर्सिटी के मुद्दे पर 60 से अधिक किताबें देकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर का काम किया है, जिसने सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिन्दुत्व जैसी हिंदुत्व की राजनीति पर भारत की विशालतम किताब दिया है और जिनकी खेल-कूद, फिल्म-मीडिया इत्यादि असंख्य विषयों पर विशेषज्ञ जैसी टिप्पणियां लोगों को विस्मित करतीं हैं, वैसे दुसाध पर कोई शोध न होना या उनकी कोई किताब कोर्स में लगना, क्या हैरान करने वाला विषय नहीं है!

शेष में!

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

इस पुस्तक की भूमिका लिखकर, इसे समृद्ध करने के लिए हम प्रो. गोपाल प्रसाद के प्रति आभारी हैं, जिन्होंने भारी व्यवस्तता के बीच हमारे अनुरोध की रक्षा करते हुए अल्प समय के मध्य इसकी भूमिका लिख दिए। आभारी हैं एच. एल. दुसाध साहेब के प्रति जिन्होंने हमारे अनुरोध पर पुस्तक के लिए मूल्यवान सुझाव दिए। कृतज्ञ हैं 'पब्लिकेशन्स अतुल्य 'परिवार के प्रति जिन्होंने थोड़े से समय में ही इतने सुन्दर ढंग से इसे पाठकों के बीच ला दिया। उम्मीद करते हैं, यह पुस्तक पाठकों को एक महान बौद्धिक नायक से रूबरू करने में सक्षम होगी।

डॉ. कौलेश्वर प्रियदर्शी –डॉ. अनीता गौतम

दिनांक : 26 नवम्बर, 2017

संदर्भ

1. चौबे, प्रभाकर, आगे न जाने का होय, देशबंधु, 26 मार्च, 2017
2. गौड़ा, एमवी राजीव - सोज, सलमान, गहरे संकट की ओर अर्थव्यवस्था, दैनिक जागरण, 7 सितम्बर, 2017
3. दुसाध, एच. एल., विकास और बहुजन की असल तस्वीर, जनसन्देश टाइम्स, 18 फरवरी, 2017
4. दुसाध, एच. एल., सामाजिक अन्याय का शिकार : विश्व का विशालतम समाज, जनसंदेश टाइम्स, 8 मई, 2017
5. दुसाध, एच. एल., हिन्दू आरक्षण और बहुजन संघर्ष, पृ-267
6. दुसाध, एच. एल., शैक्षणिक परिसरों में भेदभाव के खात्मे का एकमेव उपाय : एजुकेशन डाइवर्सिटी, पृ-47
7. दुसाध, एच. एल., बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का घोषणा पत्र, पृ-17
8. वही, पृ-17
9. सं. दुसाध, एच. एल., डाइवर्सिटी इयर-बुक : 2006 , पृ-30
10. दुसाध, एच. एल., भाजपा की शक्ति के स्रोत, स्वराज खबर, 21 अप्रैल, 2017
11. सं. दुसाध, एच. एल., बिहार विधानसभा चुनाव-2015 : मंडल के लोगों ने फोड़ दिया कमंडल, पृ- 105
12. दुसाध, एच.एल., बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का घोषणापत्र, पृ-40-42
13. वही, पृ-43
14. वही, पृ-44
15. वही, पृ-45
16. प्रस्तुत पुस्तक, पृ-43
17. वही, पृ-48
18. वही, पृ-48-49
19. वही, पृ-50
20. वही, पृ- 54-56
21. वही, पृ-121
22. दुसाध, एच. एल., बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का घोषणापत्र, पृ- 50
23. दुसाध, एच. एल. लोकसभा चुनाव-2014 : भारतीय लोकतंत्र के ध्वंस की दिशा में एक और कदम, पृ-7
24. प्रस्तुत पुस्तक, पृ-80
25. दुसाध, एच. एल., लोकसभा चुनाव-2014 : भारतीय लोकतंत्र के ध्वंस की दिशा में एक और कदम, पृ- 81
26. वही, पृ-82
27. दुसाध, एच. एल., क्या लालू मोदी राज के खात्मे के प्रति गंभीर हैं!, स्वराज खबर, 1 जून, 2017
28. दुसाध, एच. एल., बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का घोषणापत्र, पृष्ठ 60-62
29. दुसाध, एच.एल., भाजपा की शक्ति के स्रोत शिल्पकार टाइम्स, स्वराज खबर 21, अप्रैल, 2017
30. वही
31. दुसाध, एच.एल., बहुजनवादी दलों की शक्ति का स्रोत शिल्पकार टाइम्स, 8 मई, 2017
32. वही
33. वही
34. दुसाध, एच. एल. दुसाध, भारत की जरुरत : राम मंदिर या सामाजिक अन्यायमुक्त भारत निर्माण, हस्तक्षेप.कॉम, 13 जून, 2017

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

अध्याय-1 : परिचय : दुसाध और डाइवर्सिटी

एच.एल. दुसाध का परिचय

नाम : एच.एल. दुसाध
पिता : बृज मोहन प्रसाद
माता : जगदेइ देवी
जीवन संगिनी : मेवाती दुसाध
संतान : प्रशान्त, प्रवीण, कविश, अविनाश और सुशीला रंजन
जन्म : 20 अक्तूबर, 1953
जन्म स्थली : ग्राम-नरौली खेम, पोस्ट-खुखुन्दू, जिला-देवरिया (उ.प्र.)
शिक्षा : हायर सेकेंडरी (प.बंगाल हायर सेकेंडरी बोर्ड से)
नौकरी : 1 अप्रैल, 1975 को 'क्लोराइड इंडिया लि.' उत्तर 24 परगना, प. बंगाल में योगदान और नवम्बर, 1995 में स्वेच्छा से त्यागपत्र।
पत्राचार का वर्तमान पता : डाइवर्सिटी हाउस, 2/1467, आदिल नगर, निकट सत्यार्थी धाम, लखनऊ-226022 संपर्क न.-9654816191, 9453417125
लेखन में प्रवेश : कला और संस्कृति की पोषिका बंग-भूमि में 33 साल रहकर दुसाध नाटक, सिनेमा, टीवी से कुछ-कुछ जुड़ने के बाद 1990 में डॉ. आंबेडकर के जीवन संघर्ष पर आधारित एक बड़े टीवी सीरियल का प्रोपोजल दूर दर्शन में डाले। किन्तु, भारी प्रयास के बाद जब मंडी हाउस से अनुमोदन नहीं मिला, बहुजन आन्दोलन में योगदान करने के लिए 'क्लोराइड इंडिया लि.' की शानदार नौकरी छोड़कर, 1997 से पूर्णकालिक तौर पर लेखन से जुड़ गए। अक्तूबर 2001 से पत्रकारीय लेखन की शुरुआत।
पहचान : डाइवर्सिटी मैन ऑफ इंडिया
संगठन : संस्थापक अध्यक्ष,बहुजन डाइवर्सिटी मिशन (बी.डी.एम)
बी.डी.एम.का उद्देश्य : मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या, आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी के खात्मे के लिए शक्ति के समस्त स्रोतों (आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक इत्यादि) में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

एच.एल.दुसाध की पुस्तकें

आज के भारत ज्वलंत समस्याएं शृंखला की पुस्तकें–

आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-1

1. तेज विकास रोशनी से वंचित : बहुजन समाज, वर्ष-2008,मूल्य : 160/रूपये
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-2
2. सच्चर रिपोर्ट के आईने में मुस्लिम समुदाय की समस्या और समाधान
   वर्ष-2008, मूल्य : 120/रूपये
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-3
3. सेज पर सवाल और नंदी ग्राम में बवाल
   वर्ष-20008, मूल्य : 250 रूपये
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-4
4. आरक्षण पर संघर्ष (विशेष संदर्भ : गुर्जर आरक्षण)
   वर्ष-2008, मूल्य : 250/रूपये
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-5
5. आस्था पर अभिव्यक्ति का हमला
   वर्ष-2008, मूल्य : 150/रूपये
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-6
6. भूमंडलीकारण के दौर में ब्राह्मणवाद कितनी बड़ी समस्या
   वर्ष-2008, मूल्य : 250/रूपये
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-7
7. सामाजिक न्याय की राजनीति की हार
   वर्ष-2009, मूल्य : 200/- रूपये
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-8
8. मुद्दाविहीन चुनाव में डाइवर्सिटी
   वर्ष-2009, मूल्य : 200/रूपये
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-9
9. स्वतंत्र मुस्लिम राजनीति की संभावनाएं
   वर्ष 2009, मूल्य : 40/-
   आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-10
10. महिला सशक्तिकरण में बाधक : शक्ति के केन्द्रों में लैंगिक विविधता की अनदेखी
    वर्ष-2010, मूल्य : 200/रूपये
    आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-11
11. नक्सलवाद के प्रतिकार का सर्वोत्तम उपाय : डाइवर्सिटी
    वर्ष-2010, मूल्य : 160/रूपये
    आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-12
12. जाति जनगणना की चुनौतियाँ
    वर्ष-2010, मूल्य : 170/रूपये
    आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-13
13. हिंदी पट्टी की बदहाली का हल
    वर्ष-2010, मूल्य : 120/रूपये
    आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-14
14. अरब जन विद्रोह के आईने में : भारत में क्रान्ति की सम्भावन
    वर्ष-2011, मूल्य : 140/रूपये
    आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-15
15. जाति उन्मूलन : मार्क्सवादी बनाम आंबेडकरवादी परियोजना
    वर्ष-2013, मूल्य : 700/रूपये
    आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-16
16. भगाणा की निर्भायाएं
    वर्ष-2014, मूल्य : 500/- रूपये
    आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-17
17. कैसे हो संविधान के उद्देश्यों की पूर्ति!
    वर्ष-2016, मूल्य : 700/रूपये
    आज के भारत की ज्वलंत समस्याएं-18

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

18. शैक्षणिक परिसरों में पसरा भेदभाव : सवर्ण वर्चस्व का परिणाम
वर्ष-2016, मूल्य : 500/रूपये

डाइवर्सिटी पर संवाद श्रृंखला की पुस्तकें–

19. मुस्लिम मुख्यमंत्री नहीं : डाइवर्सिटी (राम विलास पासवान से एक संवाद)
वर्ष-20.5, मूल्य : 30/रूपये
20. हिन्दू साम्राज्यवाद के वंचितों की मुक्ति का घोषणापत्र : डाइवर्सिटी (मार्क्सवादियों से एक संवाद)
वर्ष-2005, मूल्य : 50/रूपये
21. साहित्यकारों के लिए अस्पृश्य : डाइवर्सिटी (दलित साहित्यकारों से एक संवाद)
वर्ष-2006, मूल्य : 30/रूपये
22. डाइवर्सिटी को सम्मान देने के लिए : एक पत्र सोनिया के नाम
वर्ष-2009, मूल्य : 120/रूपये

डाइवर्सिटी इयर बुक–

23. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2006-07, वर्ष-2006, मूल्य : 600/रूपये
24. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2007-08, वर्ष-2007, मूल्य : 1000/रूपये
25. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2008-09, वर्ष-2008, मूल्य : 1500/रूपये
26. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2009-10, वर्ष-2009, मूल्य : 1500/रूपये
27. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2010-11, वर्ष-2010, मूल्य : 400/रूपये
28. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2011-12, वर्ष-2011, मूल्य : 400/रूपये
29. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2012-13, वर्ष -2012, मूल्य : 600/रूपये
30. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2013-14, वर्ष-2013, मूल्य : 1100/रूपये
31. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2014-15, वर्ष-2014, मूल्य : 2000/रूपये
32. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2015-16, वर्ष-2015, मूल्य : 2,500/रूपये
33. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2016-17, वर्ष-2016, मूल्य : 2500/रूपये

अन्यान्य पुस्तकें–

34. प्रचारतंत्र और बहुजन समाज, वर्ष-1999, मूल्य : 25/रूपये
35. भारत में बौद्ध धर्म का पतन : क्यों और कैसे! (अनुवाद अंग्रेजी से), वर्ष-1999, मूल्य : 15
36. आदि भारत मुक्ति : बहुजन समाज, वर्ष-2000, मूल्य : 1000/रूपये
37. वर्ण-व्यवस्था : एक वितरण-व्यवस्था, वर्ष-2003, मूल्य : 300/रूपये
38. हिन्दू आरक्षण और बहुजन संघर्ष, वर्ष-2003, मूल्य : 395/रूपये
39. भारत के मूलनिवासी और आर्य आक्रमण (अनुवाद बांग्ला से), वर्ष-2004, मूल्य : 150/रूपये
40. सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिंदुत्व, वर्ष-2005, मूल्य : 2 500/रूपये
41. सामाजिक परिवर्तन और बीएसपी, वर्ष-2005, मूल्य-300/रूपये
42. डाइवर्सिटी : दलित सशक्तिकरण का सर्वोत्तम औंजार, वर्ष-2005, मूल्य-700 रूपये
43. स्वर-सम्मान-सुरक्षा-समृद्धि के लिए लालू ही क्यों!, वर्ष-2005, मूल्य : 5/रूपये
44. कांशीरामवाद को साकार करती एक जिन्दा देवी : मायावती, वर्ष-2006, मूल्य : 200/रूपये
45. मंडल-2 के आइने में डाइवर्सिटी की सम्भावना, वर्ष-2006, मूल्य :300/रूपये
46. उत्तर प्रदेश में बसपा की सफलता : सोशल इंजीनियरिंग का कमाल या कुछ और!, वर्ष-2007, मूल्य : 450/रूपये
47. बहुजन समाज का हित : भागीदारी सिद्धांत में, वर्ष-2007, मूल्य : 150/रूपये
48. बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का घोषणापत्र, वर्ष-2007, मूल्य-60/रूपये
49. समतामूलक समाज निर्माण में डाइवर्सिटी की प्रभावकारिता, वर्ष-2011, मूल्य : 20रूपये
50. विकसित बिहार का सपना और विधानसभा चुनाव-2010 के मुद्दे, वर्ष-2011, मूल्य : 300/रूपये
51. जनलोकपाल का लक्ष्य : भ्रष्टाचारमुक्त भारत निर्माण या कुछ और! वर्ष-2011, मूल्य : 100/रूपये
52. जन लोकपाल : समीक्षा एवं सुझाव (संसद के प्रति एक ज्ञापन), वर्ष-2011, मूल्य : 25/रूपये
53. टैगोर बनाम ढसाल, वर्ष-2012, मूल्य : 150/रूपये
54. मानव जाति की बड़ी समस्याएं : विविधता की अनदेखी का परिणाम, वर्ष-2012, मूल्य : 50/रूपये
55. मंडल-3 : 50% अघोषित आरक्षण के खिलाफ एक महाविस्फोट, वर्ष-2013, मूल्य : 100/रूपये
56. लोकसभा चुनाव-2014 के मुद्दे और डाइवर्सिटी (मतदाताओं के समक्ष एक अपील), वर्ष-2013, मूल्य : 10/रूपये

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

57. महाप्राण नामदेव ढसाल, वर्ष-2014, मूल्य : 350/रूपये
58. राहुल गाँधी : कल आज और कल, वर्ष-2014, मूल्य : 200/रूपये
59. लोकसभा चुनाव-2014 : भारतीय लोकतंत्र के ध्वंस की दिशा में एक और कदम, वर्ष-2014, मूल्य : 300/रूपये
60. जन लोकपाल बनाम डाइवर्सिटी, वर्ष-2014, मूल्य : 200/रूपये
61. एक नया मसीहा : जीतनराम मांझी, वर्ष-2014, मूल्य : 30/रूपये
62. बहुजन राजनीति की नई उम्मीद : जीतनराम मांझी, वर्ष-2014, मूल्य : 500/रूपये
63. नेपाल में संविधान निर्माण और भागीदारी का प्रश्न, वर्ष-2015, मूल्य : 125/रूपये
64. बिहार विधानसभा चुनाव-2015 : मंडल के लोगों ने फोड़ दिया कमंडल वर्ष-2016, मूल्य : 400/रूपये
65. आखिरी उम्मीद : बहुजन छात्र, वर्ष-2016, मूल्य : 50/ रूपये
66. शैक्षणिक परिसरों में पसरे भेदभाव के खात्मे का एकमेव उपाय : एजुकेशन डाइवर्सिटी? वर्ष-2016, मूल्य : 125/रूपये

प्रकाशनाधीन

67. डाइवर्सिटी इयर बुक : 2017-18
68. बहुजन राजनीति का पतन
69. राष्ट्र की जरूरत : राम मंदिर या सामाजिक अन्यायमुक्त भारत निर्माण!
70. 2019 : भारत के इतिहास में बहुजनों की निर्णायक लड़ाई

मानव-जाति की बड़ी समस्याएं : विविधता की अनदेखी का परिणाम

एच.एल. दुसाध

एच.एल. दुसाध क्यों डाइवर्सिटी पर 60 से अधिक किताबें तैयार कर चुके हैं? क्यों उन्होंने अब तक भारत की 18 प्रमुख समस्याओं का हल डाइवर्सिटी में ही ढूंढ़ा है? क्यों वह अर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, खेल-कूद, फिल्म-मिडिया इत्यादि विविध विषयों पर टिप्पणी करते हुए डाइवर्सिटी का मुद्दा का खड़ा करते है? इसका जवाब यह है कि वह मानव जाति की प्रायः हर समस्या के पीछे डाइवर्सिटी की क्रियाशील देखते हैं। प्रस्तुत है इस विषय में उनका यह लेख, जो 2012 में इसी शीर्षक से प्रकाशित उनकी एक किताब में छपा है। **–डॉ अनीता गौतम**

हम इक्कीसवीं सदी में वास कर रहे हैं, जहां मानव सभ्यता अपने चरमोत्कर्ष पर नजर आ रही है। इस समय हम जहां अंतरिक्ष में बस्तियां बसाने की परिकल्पना में मशगूल हैं, वहीं हम दुनिया की दूरी मिटा विश्व-ग्राम की परिकल्पना को मूर्त रूप दे रहे हैं। हमने प्रकृति की प्रतिकूलताओं पर जय पाने के साथ ही तरह-तरह की बीमारियों पर भी काबू पा लिया है किन्तु, तमाम तरह की उपलब्धियों के बावजूद दावा नहीं किया जा सकता कि मानव-जाति पूरी तरह से समस्यामुक्त हो चुकी है। हम कई तरह के संकटों से जूझ रहे हैं जिसके लिए खासतौर से जिम्मेवार है मानव जाति में विविधताओं को सम्मान देने के पर्याप्त सद्गुणों का अभाव।

सभ्यताओं का टकराव : धार्मिक व सांस्कृतिक विविधताओं में व्याप्त शत्रुता का परिणाम

सैमुएल पी. हंटिंग्टन ने 1992 में 'अमेरिकन इंटरप्राईज इंस्टिट्यूट' में पहली बार व्यक्त किये गए अपने विचार को विस्तार देते हुए जब 1996 में 'द क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन एंड रिमेकिंग ऑफ वर्ल्ड वार' नामक पुस्तक निकाली तो, दुनिया एक नए आसन्न संकट से सकते में आ गयी। उन्होंने उस पुस्तक में दावा किया

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

कि विचारधाराओं के युग का अवसान हो चुका है। ऐसे में भावी विश्व-युद्ध का बुनियादी कारण विचारधारा और आर्थिक नहीं, सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान होगी। सांस्कृतिक साम्यता वाले राष्ट्र अपना-अपना समूह बना कर विरुद्ध पहचान वाले राष्ट्रों से युद्ध करेंगे। हालांकि उनकी उस थीसिस को दुनिया के जाने-माने कई चिंतकों, जिनमें अमर्त्य सेन भी हैं, ने नकार दिया था, बावजूद इसके सभ्यताओं के टकराव का भय हमारे मन के किसी कोने में बैठ गया है तो उसके पीछे कुछ कारण हैं जो इतिहास और सामाजिक मनोविज्ञान के पन्नों में दर्ज हैं।

प्रत्येक संस्कृति का एक मानदंड होता है जिसके अनुपालन के फलस्वरूप व्यक्ति अन्य नृजातीय समूहों के प्रति पूर्वाग्रह विकसित कर लेता है। समाज विज्ञानियों ने इसका खुलासा करते हुए कहा है कि 'प्रत्येक संस्कृति अपनी नई पीढ़ी को अन्य समूहों के प्रति कुछ विश्वासों, स्थिराकृतियों तथा मनोवृत्तियों एवं आचरणों को अपनाने की शिक्षा देती है। इस प्रकार पूर्वाग्रह और कुछ नहीं अपितु सांस्कृतिक विरासत तथा लोकाचार का एक अंश है।' सांस्कृतिक विरासत तथा लोकाचार से पनपा पूर्वाग्रह व्यक्ति व समूहों में दूसरे धर्मों और संस्कृतियों के प्रति कभी-कभी शत्रुता की हद तक अनादर का भाव पैदा कर देता है। धार्मिक व सांस्कृतिक विविधता में व्याप्त इस शत्रुता के कारण ही दुनिया में बेहिसाब खून बहा। इस कारण ही दुनिया के कई देशों से कई धर्म विलुप्त हो गए। अगर डॉ आंबेडकर के अनुसार भारत का इतिहास हिंदू और बौद्ध धर्म के संघर्ष का इतिहास है तो उसके पीछे धार्मिक विविधता में व्याप्त शत्रुता ही है। धार्मिक विविधता में व्याप्त शत्रुता मानवता के लिए कितनी घातक हो सकती है इसका बड़ा प्रमाण 1095 में येरुशलम की भूमि पर इस्लाम और ईसाईयत के मध्य अनुष्ठित धर्मयुद्ध (Crusade) है। 'काफिरों' के हाथों से 'पवित्र भूमि' के उद्धार के जूनून में डेढ़ सौ सालों से ज्यादा चले उस धर्मयुद्ध में जो खून बहा उसका वर्णन इतिहास के पन्नों में पढ़कर रूह कांप जाती है। सदियों से धार्मिक विविधता में व्याप्त इस शत्रुता के खात्मे का साधु-संतों और समाज सुधारकों द्वारा काफी प्रयास भी हुए पर, अपेक्षित परिणाम अब तक भी सामने नहीं आया है। सांस्कृतिक विरासत और लोकाचार से उपजी इस शत्रुता के कारण भारत सहित विश्व के अन्यान्य देशों में रह-रहकर सांप्रदायिक दंगों का सैलाब पैदा होता रहता है। बहरहाल साम्प्रदायिकता तथा कट्टरता को देश के एकीकरण तथा एकता एवं एक समान, न्यायपूर्ण लोकतांत्रिक समाज के मार्ग में बाधक मानते हुए दुनिया के असंख्य लेखक, समाजसेवी इत्यादि जो इसके खिलाफ अनवरत अभियान चलाये जा रहे हैं, उससे हम हंटिंग्टन की भविष्यवाणी के विफल होने के प्रति काफी हद तक आश्वस्त हो सकते हैं किन्तु, वैज्ञानिक पर्यावरण को लेकर जिन खतरों के प्रति आगाह कर रहे हैं उससे उबरने प्रति आश्वस्त होना कठिन लग रहा है।

ग्लोबल वार्मिंग : मानव-जाति के समक्ष नई चुनौती

पर्यावरण वैज्ञानिकों द्वारा जलवायु परिवर्तनजनित समस्याओं से आगाह किये जाने के बाद अगर पृथ्वीवासी किसी चीज को लेकर सबसे अधिक चिंतित हैं तो वह है ग्लोबल वार्मिंग। इस बात का इल्म हर किसी को हो चुका है कि इसके कारण बर्फ की चोटियां पिघलने लगेंगी जिससे समुद्र का जलस्तर बढ़ जाएगा और तटीय शहर जलमग्न हो जाएंगे पर, 'ग्लोबल वार्मिंग' का दुष्परिणाम यहीं तक सीमित नहीं है। इससे वर्षा ऋतु में बदलाव आएगा, जिससे कृषि प्रभावित होगी तथा बाढ़ व भूस्खलन के परिणामस्वरूप लोगों का स्थान्तरण होगा जो आवास समस्या पर प्रतिकूल असर डालेगा। इसके द्वारा तापमान में वृद्धि से असंख्य जीव विलुप्त हो जायेंगे। किन्तु, अन्धाधुन औद्योगीकरण की होड़ में हमने प्राकृतिक संसाधनों का जो शोषण किया उसके फलस्वरूप वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण जैसी और कई समस्याओं को जन्म देने के साथ ही जैव-विविधता पर विराट संकट खड़ा हो गया है।

पर्यावरण और संपोषित विकास

1980 के शेष वर्षों में जब दुनिया भर के वैज्ञानिकों में यह यकीन पुख्ता हो गया कि विकास के नाम पर जो मानव क्रियाएं हो रही हैं, उससे वैश्विक स्तर पर 'जलवायु परिवर्तन' और 'वैश्विक ताप' अर्थात् 'ग्लोबल वार्मिंग' के खतरे बढ़ेंगे, तब अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में संपोषित विकास (Sustainable Development) की अवधारणा का जन्म हुआ। संपोषित विकास का अवधारणा के रूप में विकास सबसे पहले 1957 में ब्रंटलैंड रिपोर्ट के प्रकाशन के साथ हुआ। इसमें कहा गया था, 'संपोषित विकास सामंजस्य में स्थायित्व लाना नहीं है, अपितु यह एक नए परिवर्तन की प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का दोहन, निवेश की दिशा, तकनीकी विकास की स्थिति तथा संस्थात्मक परिवर्तनों को वर्तमान के साथ-साथ भावी समय की आवश्यकताओं के भी अनुकूल बनाया जा सके।' जब अंधाधुन विकास के चलते पर्यावरण की स्थिति बिगड़ी उस पर सुझाव देते हुए उसमें कहा गया था, 'विकास तो हो पर संसाधनों अथवा पर्यावरण को क्षति पहुंचाए तथा लोगों एवं विश्व के भविष्य को खतरे में

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

डाले बिना।'

पर्यावरण की रक्षा के लिए लामबंद हुआ अंतर्राष्ट्रीय जगत

ब्रंटलैंड रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पांच वर्ष बाद 1992 में ब्राजील के रियो- द- जेनरो में पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक-आर्थिक विकास से सम्बंधित मुद्दे पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मलेन, जिसे 'पृथ्वी सम्मलेन' भी कहा जाता है, हुआ, जिसमें 150 के करीब सरकारों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया एवं जिसमें 'जलवायु परिवर्तन सम्बन्धी संस्थागत समझौते' तथा 'जैविक विविधता संबंधी समझौते' पर हस्ताक्षर हुए। फिर तो विकास और पर्यावरण के मुद्दे पर ऐसे सम्मेलनों का सिलसिला ही शुरू हो गया जो आज भी जारी है एवं जिनका एक ही उद्देश्य है-विश्व का पोषणकारी विकास, जो सिर्फ पर्यावरण संरक्षण से ही संभव है।

इन सम्मेलनों में अब तक पर्यावरण सरक्षण के लिए जल-मृदा-ध्वनि और औद्योगिक प्रदूषण पर नियंत्रण के साथ ज्यादा जोर जैव-विविधता की रक्षा की कार्ययोजना पर रहा है।

जैविक विविधता (Bio-diversity) पर खास चिंता

1992 के रियो सम्मलेन के बाद से ही विश्वभर में पौधों और पशुओं की असंख्य प्रजातिओं को बचाने की चिंता शुरू हुई। कारण, लोगों ने महसूस करना शुरू किया कि मनुष्य के लिए जीव विभिन्नता बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हम इसके द्वारा निर्मित अन्य वनस्पति तथा पशुओं की प्रजातियों पर निर्भर हैं। इनसे ऑक्सीजन का निर्माण, कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा को कम करना, जलचक्र का नियमन तथा मृदा संरक्षण जैसी पर्यावरणिक सेवाएं भी मिलती हैं। भोजन, औषधियों तथा सभी प्राकृतिक उत्पादों का जीव मंडल में विद्यमान विभिन्न प्रजातियों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध है। आदिवासी समुदाय का जीवन तो मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। शहरी लोग भी प्रकृति से प्राप्त उत्पादों का प्रयोग अप्रत्यक्ष रूप से करते हैं पर, मानव विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली जैव-विविधता को मनुष्य ही क्षति पहुंचाए जा रहा है और क्षति पहुंचाने का यह सिलसिला कायम रहा तो 2050 तक 10 करोड़ प्रजातियां विलुप्त हो जाएंगी। विभिन्न प्रजातियों की विलुप्ति के भयावह सिलसिले को ध्यान में रखते हुए रियो सम्मेलन से जैव-विविधता की रक्षा के लिए तरह-तरह के कानून बनाने से लेकर जागरूकता फैलाने का जो क्रम शुरू हुआ वह आज एक आन्दोलन का रूप ले चुका है, जिससे भारत भी अछूता नहीं है।

जैविक विविधता के लिए घातक : हिंदू धर्म-संस्कृति

बेशक आज भारत भी जैव-विविधता की रक्षा में बढ़-चढ़कर योगदान कर रहा है पर, हिंदू धर्म-संस्कृति सदियों से इस पर कहर बरपाती रही है, जो आज भी जारी है। प्राचीन भारत में वैदिक आर्य यज्ञ के नाम पर अंधाधुन पशुबलि करते रहे जिसके खिलाफ गौतम बुद्ध को अहिंसा का आन्दोलन चलाना पड़ा। अगर बुद्ध वह आन्दोलन नहीं चलाये होते तो अब तक यज्ञ की बलि-वेदी पर ही असंख्य प्रकार के पशु-पक्षी और पेड़-पौधे स्वाहा हो गए होते। किन्तु बलि-प्रथा से विरत होने के बावजूद हिंदुओं द्वारा शवदाह जारी रहा और इस प्रक्रिया में पेड़-पौधों की क्षति होती रही। यही नहीं वे सदियों से कुष्ठ रोग व अन्य कई बीमारियों से मरने वाले इंसानों और पशुओं को नदी-नालों में प्रवाहित करते रहे हैं। औद्योगिक क्रांति के पूर्व पर्यावरण को सर्वाधिक क्षति हिंदू धर्म-संस्कृति के अभिन्न अंग शवदाह और शव-प्रवाह प्रथा से हुई। यह सिलसिला आज भी कायम है। राहत की बात है कि विद्युत शवदाह धीरे-धीरे चलन में आ रहा है।

भारत में जैव-विविधता का संकट

बहरहाल आकड़ों के अनुसार, भारत विश्व का 12वां सबसे बड़ा जैविक विविधता संपन्न देश है। यहां 45,000 जंगली तथा 77,000 जंगली जानवरों की प्रजातियां हैं, जो मात्रा में विश्व का 6.5 प्रतिशत है। पर्यावरण विज्ञानियों के अनुमान के मुताबिक पिछले कुछ दशकों में भारत में लगभग 50 प्रतिशत वन काटे जा चुके हैं, 75 प्रतिशत जल के स्रोत दूषित हो चुके हैं एवं घास-भूमि तथा समुद्र तटों का ह्रास हो चुका है। इसके अतिरिक्त शिकार, कीटनाशकों द्वारा विषाक्तिकरण तथा अन्य मानव क्रियाओं के कारण जैव-विविधता को काफी क्षति पहुंची है। किन्तु भारत में पर्यावरणिक सिस्टम को बनाये रखने, हजारों-करोड़ों लोगों जैसे-कृषक, मछुआरों आदि की आजीविका को आधार प्रदान करने, औषधि व स्वास्थ्य सेवा संस्थानों को कच्चा माल सुलभ कराने तथा वैज्ञानिक, औद्योगिक व दूसरे क्षेत्रों में अनुसन्धान चलाने के लिए जैविक विविधता का बने रहना परमावश्यक है। भारी राहत की बात है कि लंबे समय तक जैव-विविधता की व्यापक व महत्वपूर्ण भूमिका की अनदेखी करने वाले भारत के योजनाकारों और समाजसेवियों ने अंततः कला-फैशन-साहित्य, फिल्म-टीवी, ज्ञान-विज्ञान की भांति ही पश्चिम से पर्यावरण सुरक्षा की सीख लेकर जैविक विविधता को बचाने की मुहिम छेड़ दी है। यही कारण है जहां सरकारें पर्यावरण मंत्रालय बनाकर तरह-तरह की योजनाओं पर काम कर रही हैं, वहीं अनगिनत

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

गैर-सरकारी संगठन वृक्षारोपण करने व जनजागृति फैलाने के साथ सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्रों की उन परियोजनाओं के खिलाफ जनांदोलन चला रहे हैं, जो पर्यावरण और जैव-विविधता के लिए क्षतिकर हैं। सरकारी और गैर-सरकारी क्षेत्र के ये प्रयास आश्वस्त करते हैं कि हम देश में पर्यावरणिक खतरे को सुदीर्घ काल तक टालने में सफल रहेंगे।

मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या : आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी

बहरहाल हंटिंग्टनपंथी सभ्यताओं के टकराव की जितनी भी भयावह तस्वीर पेश करें तथा पर्यावरणवादी ग्लोबल वार्मिंग की तबाही का जितना भी डरावना का खाका खींचे, ये मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या के रूप में चिन्हित नहीं हो सकतीं। हजारों सालों से लेकर आज तक निर्विवाद रूप से 'आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी' ही मानव जाति की समस्या रही है। यही वह सबसे बड़ी समस्या है जिससे मानव-जाति को निजात दिलाने के लिए ई. पू. काल में भारत में गौतम बुद्ध, चीन में मो-ती, इरान में मज्दक, तिब्बत में मुने-चुने पांय; रेनेसां उत्तरकाल में पश्चिम में हॉब्स-लाक, रूसो, वाल्टेयर, टॉमस स्पेन्स, विलियम गाडविन, सेंट साइमन, फुरिये, प्रूधो, चार्ल्स हॉल, रॉबर्ट आवेन, अब्राहम लिंकन, मार्क्स, लेनिन तथा एशिया में माओत्से तुंग, हो ची मिन्ह, फुले, शाहूजी महाराज, पेरियार, डॉ. आंबेडकर, लोहिया, कांशीराम इत्यादि जैसे ढेरों महामानवों का उदय तथा भूरि-भूरि साहित्य का सृजन हुआ एवं लाखों-करोड़ों लोगों ने प्राण बलिदान किये। इसे लेकर आज भी दुनिया के विभिन्न कोनों में छोटा-बड़ा आन्दोलन/संघर्ष जारी है।

आर्थिक और सामाजिक विषमता कर कारण : शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का असमान प्रतिबिम्बन

बहरहाल पूरी दुनिया में आर्थिक और सामाजिक विषमता की उत्पत्ति समाज में शक्ति के स्रोतों का विभिन्न सामाजिक समूहों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से होती रही है। ध्यान देने की बात है कि सदियों से ही समाज जाति, नस्ल, लिंग, भाषा इत्यादि के आधार पर कई समूहों में बंटा रहा है, मार्क्सवादियों के अनुसार सिर्फ अमीर-गरीब में नहीं। जहां तक शक्ति का सवाल है, सदियों से समाज में इसके तीन प्रमुख स्रोत रहे हैं-आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक। शक्ति के ये स्रोत जिस समूह के हाथों में जितना ही संकेंद्रित रहे, वह उतना ही शक्तिशाली, विपरीत इसके जो जितना ही इनसे दूर व वंचित रहा, वह उतना ही दुर्बल व अशक्त रहा। सदियों से समतामूलक समाज निर्माण के लिए जारी संघर्ष और कुछ नहीं, शक्ति के स्रोतों में वंचित तबकों को उनका प्राप्य दिलाना ही रहा है।

समताकामियों द्वारा धार्मिक-शक्ति की उपेक्षा

जहां तक शक्ति का प्रश्न है सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई लड़ने वाले तमाम चिंतक, विशेषकर मार्क्सवादी धार्मिक-शक्ति की बुरी तरह उपेक्षा करते रहे हैं। यह डॉ. आंबेडकर थे जिन्होंने इसकी अहमियत को समझा और साबित किया कि धर्म भी शक्ति का स्रोत होता है और धन-सम्पति की तुलना में 'धर्म' की शक्ति अधिक नहीं, तो किसी प्रकार कम भी नहीं। वास्तव में धर्म का मनुष्य के हृदय पर शासन रहने' के कारण यह समाज में शक्ति का एक विराट केन्द्र रहा है। चूंकि हर धर्म के अनुयायियों का लक्ष्य लौकिक-पारलौकिक सुख के लिए ईश्वर-कृपा लाभ करना रहा है और पोप-पुरोहित-मौलवी ईश्वर और भक्तों के बीच मध्यस्थ का रोल निभाते रहे हैं, इसलिए धार्मिक-शक्ति का लाभ ये ही उठाते रहे हैं। धार्मिक शक्ति से लैस होने के कारण ही प्राचीन रोमन गणराज्य में प्लेबियन बहुसंख्यक होकर भी अल्पजन पैट्रिशियनों के समक्ष लाचार बने रहे। इस कारण ही भारत के ब्राह्मण तो साक्षात् 'भूदेवता' ही बन गए और समाज में इतनी शक्ति अर्जित कर ली कि 70 वर्ष का क्षत्रिय भी दस वर्ष के ब्राहमण बालक तक के समक्ष सर झुकाने के लिए बाध्य रहे। इन्होंने देवालयों में इतनी धन-सम्पति इकट्ठी कर ली थी कि विदेशी लुटेरे खुद को भारत पर हमला करने से न रोक सके। इस शक्ति से समृद्ध मध्ययुग के यूरोप में पोप-पुजारियों की जीवनशैली वहां के राजे-महाराजाओं के लिए भी इर्ष्या की वस्तु बन गई थी। इस शक्ति से पूरी दुनिया की महिलाएं और भारत के दलित-पिछड़ों जैसे कई सामाजिक समूहों को पूरी तरह दूर रखा गया। धार्मिक शक्ति का महत्त्व इक्कीसवीं सदी में कम हो गया है, ऐसा दावा कोई नहीं कर सकता।

सामाजिक-आर्थिक विषमता के खात्मे के लिए : शक्ति के केन्द्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन

यह सही है कि हजारों वर्षों से दुनिया के हर देश का शासक-वर्ग ही कानून (धर्माधारित) बना कर शक्ति का वितरण करता रहा है पर, यदि हम यह जानने की कोशिश करें कि सारी दुनिया के शासक जमातों ने अपनी स्वार्थपरता के तहत कौन सा रास्ता अख्तियार कर सामाजिक और आर्थिक विषमता को जन्म दिया; शक्ति का असमान वितरण किया तो हमें विश्वमय एक विचित्र एकरूपता का दर्शन होता

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

है। हम पाते हैं कि सभी ने शक्ति के केन्द्रों में सामाजिक (Social) और लैंगिक (Gender) विविधता (Diversity) का असमान प्रतिबिम्बन करा कर ही मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या को जन्म दिया। अगर हर जगह शक्ति के स्रोतों का बंटवारा विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं की संख्यानुपात में किया गया होता तो क्या दुनिया में आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी की स्थिति पैदा होती? यह मानव-जाति का बड़ा दुर्भाग्य है कि समाज परिवर्तन का महान रूपकार मार्क्स इस तथ्य की उसी तरह अनदेखी कर गया, जैसा कि उसने नीग्रो-स्लेवरी के मामले में किया।

शक्ति के असमान बंटवारे से पैदा हुआ : क्रांतियों का सैलाब

बहरहाल प्राचीन काल से लेकर आधुनिक विश्व के उदय के पूर्व तक सर्वत्र ही सामाजिक और लैंगिक विविधता की अनदेखी हुई तो इसलिए कि राजतंत्रीय व्यवस्था के दैविक अधिकार (Divine right) सम्पन्न शासक वर्गों में 'जीओ और जीने दो' की भावना ही विकसित नहीं हुई थी। विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं को शक्ति में शेयर देना उनकी सोच से परे था। धर्माधिकारियों के प्रचंड प्रभाव से दैविक गुलाम (Divine slave) में परिणत वंचित तबकों के स्त्री-पुरुषों में भी शक्ति-भोग की आकांक्षा पैदा नहीं हुई थी। किन्तु बहुत देर से ही सही, 1096 में नारमंडी के राजा विलियम ने स्व-हित में सामंतों का अधिकार संकुचित करने के लिए जब 'ओथ सालिसबरी' के रास्ते जन साधारण से सहयोग मांगा, वह मानव जाति के इतिहास की एक युगांतरकारी घटना साबित हुई। तब कृषक बहुजन ने सामंतों के बजाय सीधे राजा के प्रति अपनी वफादारी की शपथ ली और विनिमय में राजा ने उन्हें शक्ति के केंद्रों में कुछ हिस्सेदारी देने का वादा किया। राजा के साथ सशर्त समझौते से जनसाधारण ने शक्ति (अधिकार) का जो स्वाद चखा वह राजतंत्रीय-व्यवस्था के लिए काल साबित हुआ। इससे वंचितों में अधिकाधिक शक्ति-भोग की लालसा तीव्रतर होती गयी जो 1215 में 'मैग्नाकार्टा' (स्वाधीनता का पहला मुक्ति-पत्र) अर्जित करते हुए 1689 में 'बिल ऑफ राइट्स' हासिल करने के बाद ही कुछ शांत हुई। मैग्नाकार्टा से बिल ऑफ राइट्स अर्जित करने तक, सुदीर्घ पांच सौ वर्षों का अंग्रेज बहुजन के संग्राम का पथ कांटों भरा रहा। इस दौरान हॉब्स, लॉक जैसे बुद्धिजीवियों ने लोगों में शक्ति-अर्जन की भूख बढ़ाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। परिणामस्वरूप वंचितों को शक्ति के स्रोतों से जोड़ने के लिए फ्रांस, अमेरिका, रूस, चीन सहित दुनिया के अन्यान्य देशों में क्रांतियों का सैलाब उठा। इनसे प्रेरणा लेकर आज भी आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी के खात्मे का संघर्ष दुनिया के विभिन्न अंचलों में जारी है।

शक्ति-वितरण के लिए : लोकतांत्रिक व्यवस्था

बहरहाल ब्रितानी जनगण ने पांच सौ सालों तक अधिकार अर्जन के लिए खुद को जो बार-बार गृह-युद्ध में झोंका, उससे प्रेरणा लेकर दूसरे देशों के वंचितों ने सिर्फ क्रांतियों का सैलाब ही पैदा नहीं किया, बल्कि शक्ति के सम्यक बंटवारे के लिए उन्होंने राजतंत्रीय-व्यवस्था को पलट कर जो गणतांत्रिक-व्यवस्था दी, उसकी भी नकल किया। यही कारण है दुनिया के सारे देशों में एक-एक करके राजतंत्र का ध्वंस और लोकतंत्र की स्थापना होते गया। लोकतंत्र के धीरे-धीरे परिपक्व होने के साथ बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अधिकांश लोकतान्त्रिक देशों ने उपलब्धि किया कि तमाम तबकों और महिलाओं के मध्य शक्ति का न्यायोचित बंटवारा किये बिना लोकतंत्र को सलामत नहीं रखा जा सकता। ऐसे में उन्होंने समस्त आर्थिक गतिविधियों, शिक्षण संस्थाओं, फिल्म-मीडिया, राजनीति की समस्त संस्थाओं इत्यादि में सामाजिक और लैंगिक विविधता अर्थात् 'जिसकी जितनी संख्या भारी-उसकी उतनी भागीदारी' लागू करने का उपक्रम चलाया। इसका परिणाम यह हुआ कि दुनिया भर में महिलाओं, नस्लीय भेदभाव के शिकार अश्वेतों इत्यादि विभिन्न वंचित समूहों को लोकतांत्रिक देशों में शक्ति में शेयर मिलने लगा। ऐसा होने पर उन देशों में आर्थिक-सामाजिक विषमता के खात्मे और लोकतंत्र के सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता के रास्ते विषमता की समस्या से निपटने में जिन देशों ने उल्लेखनीय सफलता अर्जित की उनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं कनाडा, अमेरिका, यूरोपीय देश, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया, मलेशिया और सबसे बढ़कर दक्षिण अफ्रीका।

विविधता नीति के सहारे विषमता के खात्मे का सर्वोत्तम मिसाल : दक्षिण अफ्रीका

दक्षिण अफ्रीका भारत की तरह ही विविधतामय देश है, जहां 79.6 प्रतिशत मूलनिवासी कालों, 9.1 प्रतिशत गोरों, 8.9 प्रतिशत कलर्ड और 2.5 प्रतिशत एशियाई व अन्य श्रेणी का वास है। नेल्सन मंडेला के सत्ता में आने के पूर्व वहां गोरों ने सामाजिक विविधता की भयावह अनदेखी करते हुए शक्ति के स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा जमा रखा था। मंडेला के सत्ता में आने के बाद जब वहां लोकतंत्र स्थापित हुआ,

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

सरकार ने संविधान में सामाजिक विविधता लागू करने का प्रावधान सुनिश्चित किया। परिणामस्वरूप वहां के चारों प्रमुख सामाजिक समूहों के मध्य संख्यानुपात में समस्त आर्थिक गतिविधियों, राजनीतिक संस्थाओं इत्यादि में भागीदारी का मार्ग प्रशस्त हुआ। इससे वहां जिन गोरों का शक्ति स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा था, वे 9-10 प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य हुए। ऐसे में उनके हिस्से की 70-75 प्रतिशत सरप्लस शक्ति शेष वंचित समूहों में बंटनी शुरू हो गयी। अब गोरों की निहायत ही लोकतंत्र विरोधी नीति के चलते भयंकर आर्थिक और सामाजिक विषमता की खाई में फंसा दक्षिण अफ्रीका तेजी से इससे उबरने की राह पर चल पड़ा है। उल्लेखनीय है कि आज संख्यानुपात में सिमटने के कारण गोरे दक्षिण अफ्रीका छोड़ कर भागने लगे हैं।

भारत में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतीकात्मक प्रदर्शन

भारत समाज असंख्य जातियों और धार्मिक समुदायों से गठित है। इसे कुछ सामान्य विशेषताओं के आधार पर चार मुख्य सामाजिक समूहों-(1) सवर्ण, (2) ओबीसी, (3) एससी/एसटी और (4) धार्मिक अल्पसंख्यक- में वर्गीकृत किया गया है। यह वर्गीकरण ही भारत की सामाजिक विविधता है। अगर आजाद भारत के शासकों की मंसा सही होती तो वे इन चारों समूहों और उनकी महिलाओं के संख्यानुपात में आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्र के अवसरों का बंटवारा कराते। इसके लिए वे उन देशों से प्रेरणा लेते, जिनसे लोकतंत्र का प्राथमिक पाठ पढ़ा है। लेकिन हर बात में विदेशियों की नकल करने वाले हमारे शासक वर्ग ने विविधता नीति का अनुसरण करने में पूरी तरह परहेज रखा। हालांकि यह कहना ज्यादती होगी कि बिलकुल ही प्रेरणा नहीं लिया। लिया मगर प्रतीकात्मक, जैसे मौजूदा संप्रग सरकार में महिला राष्ट्रपति, मुस्लिम उप- राष्ट्रपति, अल्पसंख्यक प्रधानमंत्री, दलित स्पीकर और आदिवासी डीप्टी स्पीकर बनाया गया है। उच्च पदों पर सामाजिक-लैंगिक विविधता के ऐसे सतही प्रतिबिम्बन को हमारे बुद्धिजीवी भारतीय लोकतंत्र की मजबूती का सूचक मान कर खूब खुश होते रहे हैं। स्वाधीन भारत की तमाम सरकारें भी ऐसा ड्रामा करके ही अपने लोकतंत्र पर गर्वित होती रहीं, पर शक्ति के असल केन्द्रों में विविधता के प्रतिबिम्बन से परहेज किया। परिणामस्वरूप विश्व में सर्वाधिक गैर-बराबरी का साम्राज्य भारत में कायम हुआ।

यहां के विशेषाधिकार युक्त चिरसुविधाभोगी 15 प्रतिशत अल्पजनों का शक्ति स्रोतों पर लगभग 80-85 प्रतिशत कब्जा है। विविधता की अनदेखी के कारण ही हम महिला सशक्तीकरण के मोर्चे पर बांग्लादेश जैसे पिछड़े राष्ट्र से भी पिछड़े हैं। इस कारण ही सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुस्लिम समुदाय की बदहाली ने राष्ट्र को सकते में डाल दिया है। इस कारण ही एससी/एसटी और ओबीसी की उद्योग-व्यापार, फिल्म-मीडिया में नगण्य तो देवालयों में शून्य भागीदारी है। इतनी गैर-बराबरी किसी भी देश में क्रांति को आमंत्रण दे देती, लेकिन भारत में वैसा कुछ नहीं हो रहा है तो क्यों, इसका खुलासा कोई समाज-मनोविज्ञानी ही कर सकता है। पर, ऐसा नहीं कि इसका कोई असर ही नहीं हो रहा है। हो रहा है, तभी तो विषमता से पीड़ित एक तबके ने 2050 तक बन्दूक के बल पर लोकतंत्र के मंदिर पर कब्जा जमा लेने की खुली घोषणा कर दी है पर, क्या हमारा शासक वर्ग इससे परेशान है! बहरहाल अगर गैर-बराबरी के दुष्परिणामों को जानते हुए भी शासक वर्ग सामाजिक और लैंगिक विविधता की बुरी तरह उपेक्षा किये जा रहा है तो उसके पृष्ठ में क्रियाशील है वर्णवादी मानसिकता।

सामाजिक और लैंगिक विविधता की सबसे बड़ी दुश्मन : वर्ण-व्यवस्था

हमारे शासकों की सामाजिक-लैंगिक विविधता विरोधी मानसिकता का सम्बन्ध उस वर्ण-व्यवस्था से है, जिसे उनके महान आदर्श विवेकानंद ने मानव-जाति को ईश्वर-प्रदत सर्वश्रेष्ठ उपहार कहा है। महात्मा गांधी जैसे राष्ट्रपिता और इ एस नम्बूदरीपाद जैसे महान मार्क्सवादी भी विवेकान्द की भांति वर्ण-व्यवस्था की प्रशंसा में पंचमुख रहे। पर, आर्यों द्वारा प्रवर्तित वर्ण-व्यवस्था दुनिया की ऐसी पहली व अनुपम सामाजिक व्यवस्था थी, जिसमें किसी देश की बहुसंख्यक आबादी को शक्ति (आर्थिक-राजनीतिक-धार्मिक) में एक कतरा भी न देने की चिरस्थाई व्यवस्था की गयी। यह दुनिया की पहली व्यवस्था थी जिसमें किसी समाज को चार भागों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रातिशूद्र) में बांटकर एक अपरिवर्तनीय सामाजिक विविधता को जन्म दिया गया। इसमें अध्ययन-अध्यापन, पौरोहित्य, राज्य-संचालन, सैन्य-वृत्ति, भूस्वामित्व, व्यवसाय-वाणिज्य इत्यादि के सारे अवसर जन्मसूत्र से सिर्फ ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों से युक्त सवर्ण-पुरुषों के लिए आरक्षित रहे। इसके प्रवर्तकों ने खुद स्व-वर्ण की महिलाओं तक को शक्ति के केन्द्रों में स्वतन्त्र भागीदारी नहीं दिया। उन्होंने शूद्रातिशूद्रों को आर्थिक-राजनीतिक के साथ धार्मिक शक्ति से पूरी तरह दूर कर दी। धार्मिक स्रोतों से दूर रखने के लिए जहां शूद्रातिशूद्रों को तीन उच्चतर वर्णों(सवर्णों) की निष्काम सेवा में मोक्ष संधान करने का कानून बनाया, वहीं सभी स्त्रियों को पति-चरणों में स्वर्ग ढूढ़ने का प्रावधान दिया। शूद्रातिशूद्रों और नारियों के लिए किसी भी किस्म

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

की शक्ति का भोग अधर्म था। इस व्यवस्था द्वारा पूरी तरह शक्तिहीन बने शूद्रातिशूद्रों के लिए अच्छा नाम तक रखना वर्जित रहा। चूंकि वर्ण-व्यवस्था ईश्वरकृत रूप में प्रचारित रही इसलिए सवर्ण शक्ति के स्रोतों का भोग अपना दैविक-अधिकार मानने की मानसिकता से पुष्ट रहे। विपरीत इसके दैविक-गुलाम बने शूद्रातिशूद्र और महिलाएं खुद को पूरी तरह शक्ति के अनाधिकारी समझते रहे। वर्ण-व्यवस्था के कानूनों के तहत शक्ति के बंटवारे का कार्य आईपीसी (भारतीय दंड संहिता), जिसके तहत बौद्धोत्तर भारत में पहली बार कानून की नजरों में एकबराबर किया गया, के लागू होने के एक दिन पूर्व तक चलता रहा। पर आईपीसी भी शक्ति के स्रोतों को सवर्णों के चंगुल से मुक्त कराने में आंशिक रूप से ही सफल हो पाई। इसलिए आजाद भारत को विरासत में जहां भयावह आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी मिली, वहीं दुर्भाग्य से सत्ता की बागडोर उन्हीं लोगों के हाथ में आई जो शक्ति के सभी स्रोतों पर पूर्णरूपेण कब्जा रखना अपना दैविक-अधिकार मानते रहे।

स्वाधीन भारत के सुपर-स्टार नेताः लोकतंत्र-विरोधी

संविधान निर्माता बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर को स्वाधीन भारत के शासकों की मानसिकता का अहसास था। इसलिए उन्होंने संविधान सौंपने के पूर्व राष्ट्र को सावधान करते हुए कहा था कि हमें निकटतम समय के मध्य आर्थिक और सामाजिक विषमता का खात्मा कर लेना होगा, नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के परखचे उड़ा देगी। लेकिन पंडित नेहरू, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी, ज्योति बसु, अटल बिहारी वाजपेयी, जय प्रकाश नारायण जैसे राजनीति के सुपर-स्टार तक भी लोकतंत्र की सलामती की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठा सके। फलतः विषमता की खाई बढ़ती और बढ़ती गयी। हालात यहां तक पहुंच गये कि 2009 में विषमता से पीड़ित एक तबके द्वारा 2050 तक लोकतंत्र के मंदिर पर बंदूक के जोर पर कब्जा जमाने का ऐलान कर दिया गया। यदि लोकतंत्र की सलामती की कसौटी पर इन बड़े नेताओं की भूमिका का सही तरह से आंकलन किया जाय तो वे लोकतंत्र विरोधी ही नजर आयेंगे।

बहुजन डाइवर्सिटी मिशन का उदय

स्वाधीन भारत के शासकों की लोकतंत्र-विरोधी नीतियों के चलते आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी का जो बेइंतहां विस्तार हुआ उसके खात्मे के लिए गांधीवादी, मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी, लोहियावादी और आंबेडकरवादी विचारधारा से जुड़े ढेरों राजनीतिक व सामाजिक संगठन 'समतामूलक समाज की स्थापना', सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति', 'सामाजिक विषमता का खात्मा' जैसे आकर्षक नारों के साथ वजूद में आये, पर लक्ष्य से दूर रहे। इसका खास कारण यह रहा कि सामाजिक और आर्थिक विषमता की उत्पत्ति का सुस्पष्ट चित्र उनके पास नहीं था। इसलिए वे टुकड़ों-टुकड़ों में शक्ति अर्जन की लड़ाई लड़ते रहे। कोई भूमि में बंटवारे की तो कोई मजदूरी बढ़वाने की; कोई दलितों के लिए तो कोई पिछडों के लिए; कोई मुसलमानों की तो कोई महिलाओं के हितों की लड़ाई लड़ता रहा। आज की तारीख में कोई पिछड़ों और मुसलमानों को नौकरियों में तो कोई महिलाओं को राजनीति में आरक्षण दिलाने की लड़ाई लड़ रहा है। इनमें किसी के पास भी ऐसा प्रोग्राम नहीं रहा जिससे मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या का मुकम्मल हल; लोकतंत्र का सुदृढ़ीकरण तथा सभी समुदायों का समान सशक्तीकरण किया जा सके। ऐसी स्थिति में ही 15 मार्च, 2007 को हम कुछ आम्बेडकरवादी लेखक-एक्टिविस्टों ने मिलकर 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन' की स्थापना की। चूंकि मिशन से जुड़े लोगों का यह दृढ़ विश्वास रहा है कि आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी ही मानव-जाति की सबसे बड़ी समस्या है तथा शक्ति के स्रोतों का विभिन्न तबकों और महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से ही सारी दुनिया सहित भारत में भी इसकी उत्पत्ति हुई है, इसलिए ही हमने शक्ति के सभी स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन कराने की कार्ययोजना बनायी। ऐसे में मिशन के तरफ से निम्न क्षेत्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता का प्रतिबिम्बन कराने अर्थात् विविधतामय भारत के चार सामाजिक समूहों-सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों-के स्त्री-पुरुषों की संख्यानुपात में अवसरों के बंटवारे की निम्न दस सूत्रीय कर्मसूची स्थिर की।

1. सेना व न्यायालयों सहित सरकारी और निजी क्षेत्र की सभी स्तर की, सभी प्रकार की नौकरियों व धार्मिक प्रतिष्ठानों;
2. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा दी जाने वाली सभी वस्तुओं की डीलरशिप;
3. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा की जाने वाली सभी वस्तुओं की खरीददारी;
4. सड़क-भवन निर्माण इत्यादि के ठेकों, पार्किंग, परिवहन;
5. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा चलाये जाने वाले छोटे-बड़े स्कूलों, विश्वविद्यालयों, तकनीकी-व्यावसायिक शिक्षण संस्थाओं के संचालन, प्रवेश व अध्यापन;
6. सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा अपनी नीतियों, उत्पादित वस्तुओं इत्यादि के विज्ञापन के मद में खर्च की जाने वाली धनराशि;

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

7. देश-विदेश की संस्थाओं द्वारा गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) को दी जाने वाली धनराशि;
8. प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं फिल्म-टीवी के सभी प्रभागों;
9. रेल-राष्ट्रीय मार्गों की खाली पड़ी भूमि सहित तमाम सरकारी और मठों की खली पड़ी जमीन व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए अस्पृश्य-आदिवासियों में वितरित हो एवं पौरोहित्य;
10. ग्राम-पंचायत, शहरी निकाय, संसद-विधासभा की सीटों राज्य एवं केन्द्र की कैबिनेट; विभिन्न मंत्रालयों के कार्यालयों; विधान परिषद-राज्यसभा; राष्ट्रपति, राज्यपाल एवं प्रधानमंत्री व मुख्यमंत्री के कार्यालयों इत्यादि।

आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी के खात्मे के मुक्कमल सूत्रों से लैसः बीडीएम का दस सूत्रीय एजेंडा

अगर विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य शक्ति के स्रोतों का असमान बंटवारा ही आर्थिक और सामाजिक विषमता की सृष्टि का मूल कारण है तो बीडीएम के दस सूत्रीय एजेंडे उसके निवारण में पूरी तरह सक्षम हैं। इनमें एक वैश्विक अपील है। इसे लागू कर किसी भी देश में समतामूलक समाज की स्थापना की जा सकती है। जहां तक भारत का सवाल है यहां विषमता इसलिए है क्योंकि 15 प्रतिशत सवर्णों का शक्ति के तमाम स्रोतों पर 80-85 प्रतिशत वर्चस्व है। 15 प्रतिशत कहना ज्यादती होगी, क्योंकि इसमें उनकी महिलाओं की भागीदारी अति न्यून है। ऐसे में कहा जा सकता है कि बमुश्किल 8-9 प्रतिशत विशेषाधिकारयुक्त लोगों का ही शक्ति केन्द्रों पर दक्षिण अफ्रीका के गोरों की भांति ही 80-85 प्रतिशत कब्जा है। देश के योजनाकारों की बहुत बड़ी कमी रही कि इस विषमताकारी वर्चस्व को नियंत्रित किये बिना, वे वंचित समुदायों की बेहतरी की योजनाएं बनाते रहे। यह योजनाएं भी हिस्सेदारीमूलक नहीं, बहुधा राहतकारी। बहरहाल बीडीएम का दस सूत्रीय एजेंडा लागू होने पर 80-85 प्रतिशत कब्जा जमाने लोग अपनी संख्यानुपात पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे, जैसे दक्षिण अफ्रीका के गोरे हुए। ऐसा होने पर उनके हिस्से की अतिरक्त (Surplus) शक्ति के बाकी तीन वंचित समुदायों के मध्य बंटने के दरवाजे स्वतः खुल जायेंगे। शक्ति के उपरोक्त केन्द्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक-अल्पसंख्यकों के मध्य व्याप्त विषमता का धीरे-धीरे विलोप हो जाएगा। बीडीएम के दस सूत्रीय एजेंडे के लागू होने से आर्थिक और सामाजिक विषमता का तो खात्मा होगा ही, राष्ट्र दूसरी समस्याओं से भी उबरने में सक्षम हो उठेगा।

भ्रष्टाचार को कम करने के लिए : डाइवर्सिटी

भ्रष्टाचार पर काबू पाने के लिए इन दिनों जन लोकपाल विधेयक तैयार करने की कवायद चल रही है जिसका जोर भ्रष्टाचार के स्रोतों को बंद करने के बजाय भ्रष्ट नेताओं और नौकरशाहों के विरुद्ध कार्रवाई करने पर ज्यादा है। पर भ्रष्टाचार की व्याप्ति सर्वव्यापी है। चपरासी, बाबू, फिल्म स्टार से लेकर सीटी बैंक घोटालेबाजों, किडनी चोरों और इच्छाधारी बाबाओं तक यह फैला हुआ है। बहरहाल जिस जन लोकपाल विधेयक को भ्रष्टाचार के विरुद्ध कारगर हथियार मानकर बहुत से लोग काफी आशावादी हो चले हैं वह विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न नामों से लागू ओम्बड्समैन का ही भारतीय संस्करण है। ट्रान्सपरेंसी इंटरनेशनल की रिपोर्ट से पता चलता है कि विदेशों में, जहां भारत से कहीं ज्यादा नैतिकता है, ओम्बड्समैन भ्रष्टाचार रोकने में विफल साबित हुआ है। यही कारण है कुछ बुद्धिजीवी यह कहने लगे हैं कि बिना सामाजिक, सांस्कृतिक सवालों से टकराये भ्रष्टाचारविहीन समाज का रास्ता खोलना सम्भव नहीं है। बहरहाल आज की तारीख में जहां भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए तरह-तरह के सुझाव सामने आ रहे है वहां इस दिशा में विविधता (Diversity) सिद्धांत लागू करना कारगर साबित हो सकता है

डाइवर्सिटी सिद्धांत लागू होने पर शक्ति के सभी केंद्रों में अवसरों का बंटवारा भारत के चार सामाजिक समूहों-सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों—के स्त्री-पुरुषों के संख्यानुपात में होगा। इससे जिन सवर्णों का उद्योग, व्यापार, मीडिया, मिलिट्री के उच्च पदों, न्यायपालिका, मंत्रालयों के सचिव आदि पदों पर 80-85 प्रतिशत कब्जा हैं, एवं जहां का भ्रष्टाचार ही राष्ट्र के लिए विराट समस्या बन गया है, वहां वे 7-8 प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे। कारण, उपरोक्त सभी क्षेत्रों में लैंगिक विविधता लागू होने पर सवर्णों के कुल 15 प्रतिशत का आधा हिस्सा उनकी महिलाओं के हिस्से में चला जाएगा। हालांकि सवर्ण महिलाओं में भी नीरा राडिया, बरखा दत्त, जैसी महिलायें हैं जिन्हें अपवाद ही माना जाएगा। सामान्यतया सवर्ण महिलाओं में भी दलित-पिछड़ों की भांति ऐतिहासिक कारणों से आकांक्षा-स्तर और उपलब्धि-अभिप्रेरणा निम्न स्तर की है। इसका आधिक्य सवर्ण पुरुषों में ही हैं। ऐसे में सवर्ण जब डाइवर्सिटी के रास्ते महज 7-8 प्रतिशत अवसरों तक सिमटने के लिए बाध्य होंगे, तब निश्चय ही भ्रष्टाचार में मात्रात्मक गिरावट आएगी।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

भ्रष्टाचार कम करने में डाइवर्सिटी एक और रूप में प्रभावी साबित हो सकती है। वह इस तरह कि जब अपराधियों का संरक्षण व बचाव करने वाली संस्थाओं में सवर्णों की उपस्थिति 80-85 प्रतिशत की जगह महज 7-8 प्रतिशत पर सिमटेगी तब सवर्ण भ्रष्टाचारियों में मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की कमी आ जाएगी। इस मनोवैज्ञानिक सुरक्षा के अभाव में निश्चय ही भ्रष्टाचर में गिरावट आयेगी।

लोकतंत्र की सलामती के लिए : डाइवर्सिटी

25 नवम्बर, 1949 को को संविधान सौंपने के पूर्व बाबा साहेब ने राष्ट्र को सावधान करते हुए कहा था कि ''हमें निकटतम समय के मध्य आर्थिक और सामाजिक असमानता दूर कर लेनी होगी, नहीं तो विषमता से पीड़ित जनता लोकतंत्र के ढांचे को विस्फोटित कर सकती हैं।'' ऐसे में लोकतंत्र की सलामती को ध्यान में रखते हुए, आजाद भारत के तमाम सरकारों की कर्मसूचियां विभिन्न सामाजिक समूहों के मध्य शक्ति (आर्थिक- राजनीतिक, धार्मिक) के सम्यक बंटवारे पर केन्द्रित होनी चाहिए थीं पर, विगत 64 सालों में ऐसा नहीं किया गया इसलिए विश्व में सबसे ज्यादा आर्थिक-सामाजिक विषमता भारत में है। विषमता से पीड़ित एक तबके ने 2050 तक बन्दूक के बल पर लोकतन्त्र के मंदिर पर कब्जा जमाने का ऐलान कर दिया है। ऐसी घोषणा देर सबेर दूसरे वंचित समूह भी कर सकते हैं। जाहिर है घोर आर्थिक-सामाजिक विषमता के चलते कल हमारे लोकतंत्र का ढांचा विस्फोटित भी हो सकता है किन्तु, शक्ति के केंद्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर शर्तिया तौर पर यह खतरा टल सकता है।

मुक्कमल महिला सशक्तीकरण के लिए : डाइवर्सिटी

सारी दुनिया में सदियों से महिलाओं को शक्ति के सभी केंद्रों से दूर रखकर ही अशक्त बनाया गया। उन्हें मुकम्मल रूप से सशक्त सिर्फ शक्ति के सभी केंद्रों में 50 प्रतिशत हिस्सेदारी देकर ही बनाया जा सकता है। और ऐसा तभी हो सकता है जब बीडीएम के पूर्व उल्लिखित दस सूत्रीय एजेण्डे में लैंगिक विविधता लागू हो। शक्ति के सभी केंद्रों में सामाजिक विविधता के साथ लैंगिक विविधता भी लागू करने से महिला सशक्तीकरण के लक्ष्य को शत प्रतिशत हासिल कर सकते हैं।

सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुस्लिम समुदाय की बदहाली की तस्वीर को खुशहाली में बदलने के लिए : डाइवर्सिटी

जैसा कि हम बार-बार कह रहे हैं कि शक्ति के केंद्रों का समाज के विभिन्न तबकों और उनकी महिलाओं के मध्य असमान बंटवारे से ही विषमता पैदा होती है। सच्चर रिपोर्ट में उभरी मुसलिम समाज की बदहाली इसलिए है कि आजाद भारत के काले अंग्रेजों ने उन्हें सुपरिकल्पित तरीके से शक्ति के केंद्रों से दूर रखा। डाइवर्सिटी लागू होने से उनकी बदहाली की तस्वीर खुशहाली में बदल सकती है। उनकी बदहाली दूर करने के लिए डाइवर्सिटी से बेहतर और कोई उपाय नहीं हो सकता।

आरक्षण से उपजते गृहयुद्ध के हालात से निजात पाने के लिए : डाइवर्सिटी

आज जाट, गुर्जर, कायस्थ, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हर किसी को आरक्षण चाहिए। विभिन्न जातियों में आरक्षण की बढ़ती मांग ने धीरे-धीरे गृह युद्ध के हालात पैदा कर दिये हैं। इससे कभी भी विस्फोटक स्थिति पैदा हो सकती है। डाइवर्सिटी लागू होने पर राष्ट्र इस विस्फोटक हालात से निजात पा जाएगा, इसकी पूरी उम्मीद है।

नक्सलवाद के शमन के लिए : डाइवर्सिटी

बड़े से बड़े अर्थशास्त्री हों या सड़कछाप बुद्धिजीवी, हर कोई मानता है कि नक्सलवाद की जड़ आर्थिक विषमता है। नक्सलवाद को आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा घोषित करने वाली सरकारें भी ऐसा मानकर ही नक्सल प्रभावित इलाकों में करोड़ों-करोड़ों का आर्थिक पैकेज घोषित करती हैं। पर, ये योजनाएं इसलिए विफल हो जाती हैं कि उनमें नक्सलवाद से जुड़ रहे लोगों को अर्थोपार्जन के सभी क्षेत्रों में भागीदारी सुलभ कराने का रत्तीभर भी दम नहीं रहता। डाइवर्सिटी लागू होने पर हर सामाजिक समूह के स्त्री-पुरुषों को उनके संख्यानुपात में, अर्थोपार्जन की हर गतिविधियों में वाजिब हिस्सा मिलेगा। ऐसा होने पर नक्सलवाद धीरे-धीरे खत्म हो जाएगा, ऐसी कल्पना दुविधामुक्त भाव से की जा सकती है।

अस्पृश्यों को हिन्दुओं के अत्याचार से बचाने के लिए : डाइवर्सिटी

जो हिन्दू दलितों पर तरह-तरह का जुल्म करने से जरा भी नहीं हिचकते, उनकी एक मनोवैज्ञानिक दुर्बलता है। वे सख्त का भक्त होते हैं। सख्त का भक्त होते हैं इसलिए बन्दर, भालू, सांप, गदहा, पेड़-पौधा, ईट-पत्थरों को देवता मानकर पूजते रहते हैं। हिन्दुओं की इस दुर्बलता से ही भारत में 33 करोड़ देवता पैदा हो गये हैं। हिन्दू सख्त का भक्त होते हैं इसलिए विदेशागत शासकों का कृपालाभ पाने के लिए शर्मनाक हद तक समझौते करते रहे। वे सख्त का भक्त हैं इसलिए जो दलित धन-बल, शिक्षा बल इत्यादि से सम्पन्न हैं उनकी मित्रता जीतने के लिए

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

सदा तत्पर रहते हैं। वे उन्हीं दलितों पर अपना पराक्रम दिखाते हैं जो भूमिहीन, धनहीन और शिक्षाहीन हैं। डाइवर्सिटी लागू होने पर दलित उद्योगपति, व्यापारी, ठेकेदार, अखबार-चैनलों के मालिक बनने लगेंगे। इस तरह डाइवर्सिटी के रास्ते धीरे-धीरे वे शक्तिहीन से शक्तिमान में तब्दील हो जाएंगे। तब जो हिन्दू उन पर अत्याचार करते हैं, वे ही उनकी निकटता पाने के लिए तरह-तरह का उपाय ढूंढ़ने लगेंगे।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों को रोकने के लिए : डाइवर्सिटी

भारत में बहुर्राष्ट्रीय कंपनियां भारतीय कंपनियों की नकल करते हुए अपनी व्यावसायिक गतिविधियों (डीलरशीप, सप्लाई, कर्मचारियों की भर्ती) में डाइवर्सिटी लागू करने से पूरी तरह परहेज करती हैं। जबकि अपने देश में लागू करती हैं। पिछले एक दशक में कई ऐसे मौके आये जब प्राइवेट सेक्टर में आरक्षण का दबाव सरकारों के तरफ से बनाया गया। तब जहां देशी कंपनियों ने पूरी तरह हाथ उठा दिया, वहीं बहुराष्ट्रियां कंपनियों ने कह दिया कि ऐसा होने पर हम अपना कारोबार समेट कर वापस चले जाएंगे। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पुतले फूंककर उन्हें वापस भगाने की परिकल्पना करने वालों ने कभी उनकी इस दुर्बलता का फायदा उठाने की कोशिश नहीं की। डब्ल्यू.टी.ओ. की शर्तों में बंधे होने के कारण हम उन्हें भारत में कारोबार करने से रोक नहीं सकते पर, डाइवर्सिटी की शर्तें थोपने में कोई कानूनी बाधा नहीं है। ऐसी शर्त थोपने पर मुमकिन है कि अपना कारोबार समेट लें। अगर ऐसा होता है तो साम्राज्यवाद विरोधियों की मनमांगी मुरादें पूरी हो जाएगी। लेकिन इस बात की सम्भावना ज्यादा है कि वे डाइवर्सिटी की शर्तें मान जाएगी। ऐसे में डाइवर्सिटी की शर्तें बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भगाने या उनके व्यवसाय को मानवीय चेहरा देने में काफी प्रभावी हो सकती हैं।

विविधता में एकता को सार्थकता प्रदान करने के लिए : डाइवर्सिटी

भारत में विविधता में एकता है, यह बात अंग्रेज इतिहासकार विन्सेन्ट स्मिथ ने आज से लगभग 150 साल पहले कही थी। उनकी उस बात का अन्धानुकरण करते हुए, आज भी भारत के तमाम नेता, लेखक, कवि, प्रोफेसर तोते की तरह रटते रहते हैं, 'भारत की विविधता (Diversity) में एकता (Unity) है।' किन्तु भारत की विविधता में एकता है, इससे बड़ा झूठ कुछ हो ही नहीं सकता। भारत की भाषाई, सांस्कृतिक, धार्मिक, क्षेत्रीय, सामाजिक और लैंगिक इत्यादि तमाम विविधताओं पर ठंडे दिमाग से विचार करने पर यहां विविधता में एकता नहीं; शत्रुता, शत्रुता और सिर्फ शत्रुता का बोलबाला नजर आता है। भाषा के आधार पर राज्यों का बंटवारा होने के बावजूद भाषा को लेकर झगड़े होते रहते हैं। धार्मिक विविधता में शत्रुता की व्याप्ति है इसलिए रह-रह कर दंगों का सैलाब उठता रहता है। क्षेत्रीय विविधता में कथित एकता के परखचे उस समय उड़ने लगते हैं, जब समय-समय पर राज ठाकरों का उदय होता है। लैंगिक विविधता में भी सौहार्द्र का अभाव है, इसका पता स्त्री-लेखन में मिलता है। लेकिन राष्ट्र की जो सबसे बड़ी चिन्ता है, वह सामाजिक विविधता में शत्रुता की पुरअसर व्याप्ति है। सामाजिक विविधता में व्याप्त शत्रुता ने भारत की असंख्य जातियों को शत्रुता से लबरेज अलग-अलग राष्ट्रों में बांट कर रख दिया है। इसके मूल में है वर्ण-व्यवस्था जो मुख्यतः शक्ति (आर्थिक-राजनीतिक-धार्मिक) और सामाजिक मर्यादा की वितरण व्यवस्था रही। इसमें विभिन्न समाजों के मध्य शक्ति और मानवीय मर्यादा का ऐसा असमान बंटवारा हुआ कि सदा के लिए शक्ति का असंतुलन पैदा हो गया जिससे राष्ट्र आज तक उबर नहीं पाया है। शक्ति के इस असंतुलन ने विभिन्न समाजों के बीच चिरस्थाई तौर पर शत्रुता पैदा कर दी है। इसलिए यहां सामाजिक समरसता और भ्रातृत्व दूरवीक्षण यंत्र देखने की चीज बनकर रह गई है। शक्ति के सभी केंद्रों में सामाजिक और लैंगिक विविधता लागू होने पर सदियों से चला आ रहा असंतुलन दूर हो जाएगा। ऐसा होने पर ही विविधता में एकता होगी। ऐसा जब तक नहीं होता है, तब तक हमें दिल से नहीं, जबरन कहते रहना पड़ेगा, 'हमारी विविधता में एकता है।'

ब्राह्मणशाही के खात्मे के लिए : डाइवर्सिटी

सामाजिक बदलाव की लड़ाई लड़ने वाले तमाम संगठनों और बुद्धिजीवियों ने धार्मिक गतिविधियों को पूरी तरह नजरअंदाज किया। यह बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर थे जिन्होंने बताया शक्ति के स्रोत के रूप में धर्म का महत्त्व अगर आर्थिक शक्ति से ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं। शक्ति के ऐसे महत्वपूर्ण स्रोत पर 3 प्रतिशत जनसंख्या के अधिकारी ब्राह्मणों का शतप्रतिशत कब्जा रहा। इसके कारण ही ब्राह्मण भूदेवता बन गये और उनके दस वर्ष के जाहिल-गंवार बच्चों तक को बड़े से बड़े गैर-ब्राह्मण नेता-विद्वान तक दण्डवत् करने को तत्पर रहे। इस शक्तिशाली स्रोत से पूरी तरह दूर रहने के कारण ही दलित, पिछड़े और महिलाएं लगभग मनुष्येत्तर प्राणी में तब्दील हुईं। इस शक्तिशाली स्रोत के बंटवारे का पहली बार वैचारिक अभियान बीडीएम ने शुरू किया है। अगर पौरोहित्य में सामाजिक और लैंगिक

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

विविधता लागू होती तो जिन ब्राह्मणों का इसमें 100% आधिपत्य है वे 1½ प्रतिशत पर सिमटने के लिए बाध्य होंगे। इससे शर्तिया तौर पर ब्राह्मणशाही का खात्मा हो जाएगा।

सामाजिक प्रदूषण से निर्लिप्त : राजनीतिक पार्टियां

जिस तरह धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता के प्रति अनादर सांप्रदायिक दंगों की लहरें पैदा करता रहा है तथा जैविक-विविधता की अनदेखी प्राकृतिक पर्यावरण के लिए संकट बन गयी है, उसी तरह भारत में शक्ति के स्रोतों में सामाजिक और लैंगिक विविधता की उपेक्षा सदियों से समाज में नाना प्रकार के संकटों को जन्म देती रही है। इस कारण ही कोटि-कोटि शक्तिहीनों ने हिंदू-धर्म का परित्याग कर विशाल धार्मिक-अल्पसंख्यक समुदाय को वजूद में लाया। इस कारण ही अस्पृश्यों ने प्लासी (1757 में जब ब्रितानी साम्राज्य की बुनियाद पड़ी) से लेकर कोरेगांव-युद्ध (1818) में जहां ब्रिटिश साम्राज्य को पूर्णता मिली, तक अंग्रेजों का साथ दिया। आज जबकि भारत एक विश्व आर्थिक महाशक्ति बनने की राह पर है आतंकवाद, क्षेत्रवाद, माओवाद जहां विकास के समक्ष कड़ी चुनौती पेश कर रहे हैं, वहीं दलित-उत्पीड़न, महिला-उत्पीड़न इत्यादि की भरमार के कारण भारत की छवि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एक बर्बर व असभ्य मुल्क के रूप में स्थापित हो रही है। इस कारण ही प्रधानमंत्री विषमता के खात्मे के लिए पिछले कुछ वर्षों से देश के अर्थशास्त्रियों से एक सृजनशील सोच की गुहार लगाये जा रहे हैं तथा राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल बदलाव की एक नई क्रांति का आह्वान कर चुकी हैं। इसी तरह दूसरी पार्टियों के नेता भी समय-समय पर विषमता को लेकर छाती पीटते रहते हैं। पर, विभिन्न दलों के तरफ से समय-समय पर पेश की जाने वाली कर्मसूचियों पर नजर दौड़ाने पर साफ दिखता है कि उनके पास या तो शक्ति-वितरण का सही नक्शा नहीं है या वे विषमता के खात्मे के प्रति बिल्कुल ही अनिच्छुक हैं, शायद इच्छाकृत रूप से।

पर्यावरणवादियों से प्रेरणा लेने की जरूरत

अब लाख टके का सवाल है कि जब हमारी राजनीतिक पार्टियां आर्थिक और सामाजिक गैर-बराबरी की भीषणता से चिंतित होने के बावजूद इसके खात्मे की दिशा में कारगर कदम नहीं उठा रहीं हैं तब हम क्या करें? चूंकि इस समस्या की सृष्टि शक्ति के स्रोतों (आर्थिक-राजनीति-धार्मिक) में सामाजिक और लैंगिक विविधता के असमान प्रतिबिम्बन के कारण ही हुई है इसलिए हमें हर हाल में शक्ति के केन्द्रों में इसका प्रतिबिम्बन करने का प्रयास करना होगा। इसके लिए पर्यावरणप्रेमियों से प्रेरणा लेना श्रेयस्कर होगा। पर्यावरणवादी जानते हैं कि जैविक-विविधता की रक्षा किये बगैर पर्यावरण के खतरों से मानव-जाति को नहीं बचाया जा सकता। इसलिए वे वृक्षारोपण करने व जनजागृति फैलाने के साथ ही सरकारी और निजी-क्षेत्र की उन परियोजनाओं का जी-जान से खिलाफत करते हैं जो पर्यावरण और जैव-विविधता के लिए क्षतिकर हैं। भारत के पर्यावरणवादी भी ऐसा करते हैं। उनके प्रयास से करोड़ों-अरबों की ढेरों योजनाएं खटाई में पड़ गई हैं। सरकारों के लिए उनकी मांगों की अनदेखी करना आसान नहीं होता। हम भी यदि भारत से मानव-जाति की समस्या का वजूद मिटाने के प्रति गंभीर हैं तो हमें डाइवर्सिटी के लिए सघन जन जागरण चलाने के साथ ही सरकारी और निजी क्षेत्र की उन नई-पुरानी सभी परियोजनाओं/प्रतिष्ठानों का संगठित विरोध करना होगा जहां सामाजिक और लैंगिक की अनदेखी हो रही है।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

अध्याय-2

दुसाध की पुस्तकों पर विद्वानों की राय

–डॉ. अनीता गौतम

दुसाध के व्यक्तित्व और कृतित्व से अवगत कराने के उद्देश्य से तैयार इस पुस्तक में हम संपादक द्वय अपनी ओर से ओर से ज्यादा कुछ न कहकर, उनकी पुस्तकों एवं उन पर केन्द्रित विभिन्न विद्वानों के लेख एवं फेसबुक पर विभिन्न लोगों की राय के जरिये यह काम करेंगे। अब जहां तक पुस्तकों का सवाल है यहाँ समस्या यह है कि उन्होंने प्रायः छः दर्जन के करीब किताबें तैयार की हैं। इतनी पुस्तकों पर विद्वानों की राय संग्रहित करना हमारे लिए श्रमसाध्य और पाठकों के लिए भी विरक्तिकर हो सकता है। ऐसे में विभिन्न विषयों पर प्रकाशित उनकी पहली किताबों पर विद्वानों की राय से अवगत कराने का प्रयास करूंगे, जिसकी शुरुआत आदि भारत मुक्ति : बहुजन समाज से कर रही हूँ।

1. 674 पृष्ठीय **आदि भारत मुक्ति : बहुजन समाज** एच.एल. दुसाध की पहली किताब है,जो उनके मित्र राजकुमार गोसाई के छः पृष्ठीय पत्र का जवाब है एवं जो वर्ष 2000 में प्रकाशित हुई थी। दुसाध जी कई बार कह चुके हैं कि गोसाई जी के पत्र का मुक्कमल जवाब देने के लिए ही उन्होंने कलम पकड़ी।'[1]

क्रांतिकारी समाज वैज्ञानिक रचना

इस पुस्तक की सफलता की शुभकामना करते हुए जेएनयू के सामाजशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान **प्रोफेसर आनंद कुमार** लिखते हैं-: 'आदि भारत मुक्ति : बहुजन समाज 'श्री हरिलाल दुसाध की भारत की समाज व्यवस्था की समीक्षात्मक प्रस्तुति है। श्री हरिलाल जी को मैं बरसों से एक सजग, सक्रिय, और संकल्पवान चिन्तक तथा समाज सुधारक के रूप में जानता हूँ। पूर्वी उत्तर प्रदेश के दूरस्थ गाँव से कलकत्ता महानगर के आधुनिक परिवेश तक की उनकी अनुभव यात्राओं के विभिन्न पड़ाओं व मोड़ों से उत्पन्न समाज चेतना को ऐतिहासिक समाज वैज्ञानिक धरातल से जोड़ना इस अनोखे ग्रन्थ की विशिष्टताओं का आधार है। जाति की भारतीय समाज व राजनीति में केन्द्रीयता को रेखांकित करने वाली यह रचना अत्यंत सामयिक व प्रासंगिक योगदान है। मेरी कामना है कि श्री हरिलाल दुसाध की यह क्रांतिकारी समाज वैज्ञानिक रचना हिंदी भाषा में विशिष्ट स्थान बनाये तथा नए मन और नए समाज की सर्जना में भारतीय समाज का पथ आलोकित करे। मेरा विश्वास है कि आदि भारत मुक्ति : बहुजन समाज अनगिनत भारतीयों की जिज्ञासा का समाधान रखते हुए समाज उन्नयन का करुणा और मैत्रीय आधारित मानवीय स्वप्न साकार करने में सहायक होगी। करुणावतार बुद्ध से लेकर महामानव आंबेडकर तक की विराट श्रृंखला का यह परिचयात्मक ग्रन्थ अधिक से अधिक जिज्ञासुओं तक पहुंचे, यही मेरी शुभकामना है।'[2]

इसी कड़ी में सुप्रसिद्ध दलित इतिहासकार **एस.के. बिश्वास** लिखते हैं-'सहस्रों वर्षों से निरंतर दासत्व के बंधन से पिष्ट और अत्याचार से विचूर्ण एवं अस्वीकृति की शून्यता से दिग्भ्रांत, दलितों की मुक्ति और आत्म-अस्तित्व की घोषणा की उदग्र प्रेरणा, एक व्यक्ति को कैसे मुखरित कर देती है; कैसे एक अतिसाधारण को असाधारण साहित्यकार के रूप में परिणत कर देती है, अस्पृश्य दुसाध, हरिलाल उसकी उज्जवल मिसाल हैं।'[3]

एक बहुविषयक और बहुआयामी ग्रन्थ

दुसाध की पहली किताब की भूमिका लिखते हुए मशहूर दलित साहित्यकार **डॉ. जय प्रकश कर्दम** साहब ने कहा है-'आदि भारत मुक्तिः बहुजन समाज' श्री दुसाध का एक मुकम्मल ग्रन्थ है। जो समसामयिक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक सन्दर्भों पर उनके विषद ज्ञान और अध्ययन की उद्भूति है। अभिव्यक्ति का साहस चिंतन को और प्रखर बनाता है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि श्री एच.एल. दुसाध न केवल एक गंभीर अध्येता और प्रखर चिन्तक हैं बल्कि अपने विचारों को बेलाग और बेबाक ढंग से अभिव्यक्त करने का उनमे साहस भी है।

पत्र-साहित्य हिंदी साहित्य की एक स्थापित विधा है। पत्र-साहित्य के अंतर्गत अभी तक किसी बिंदु पर टिपण्णीयों से लेकर कहानियां तक खूब मिलती हैं। जवाहरलाल नेहरु की प्रसिद्ध पुस्तक 'ग्लिप्सेज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री' भी पत्र रूप में मिलती है, जो एक इतिहास ग्रन्थ है। आदि भारत मुक्ति : बहुजन समाज पत्र

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

रूप में पहला ऐसा पहला ग्रन्थ है जो इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, साहित्य,सिनेमा इत्यादि अनेक विषयों को समेटे हुए है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह एक बहुविषयक और बहुआयामी ग्रन्थ है। मानवीय सरोकारों से जुड़े व्यापक मुद्दों पर छः सौ पृष्ठों के इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में हालांकि लेखक ने काफी प्रकाश डाला है, किन्तु जिन मुद्दों और जिस शिद्दत के साथ उसने उठाया है उनपर व्यापक मंथन के लिए छः हजार पृष्ठ भी कम पड़ेंगे। हमें उम्मीद करनी चाहिए कि श्री दुसाध अपने चिंतन के इस प्रवाह को जारी रखेंगे और आने वाले समय में कुछ और महत्वपूर्ण ग्रंथों का सृजन समाज-हित में करेंगे।

आदि भारत मुक्ति का श्री दुसाध के चिंतन का रास्ता बहुजन भारत के निर्माण की ओर जाता है। उनका यह स्वप्न साकार हो। मैं समझता हूँ उनके लिए यह सबसे बड़ी शुभकामना होगी क्योंकि इसी में उनके श्रम और साधना की सार्थकता भी निहित है।'[4]

पत्र-साहित्य की दुर्लभ कृति आदि भारत मुक्ति...को न सिर्फ देश के प्रतिष्ठित विद्वानों का भरपूर प्यार मिला बल्कि समीक्षकों ने भरपूर सराहा। साप्ताहिक पायोनियर ने कहा,'भारत में लम्बे समय से बहुजन आन्दोलन के सूत्रधारों के साथ दलित एवं मेहनतकश समाज का बुद्धिजीवी वर्ग रचनाधर्मिता के क्षेत्र में शिद्दत से भूमिका निभाने हेतु प्रयासरत है। उत्तरी भारत में पिछले बीस-तीस वर्षों से दलित आन्दोलन पर जितनी पुस्तकें आईं हैं, उनमें ग्रन्थ के रूप में शायद यह पहली पुस्तक है जिसे बहुत ही गंभीरता और विस्तार से लिख गया है। तेरह अध्यायों में योजनाबद्ध रूप में लेखक ने पत्र शैली में वृहत पुस्तक हेतु गंभीर विषयों का चुनाव किया है। ...इसलिए पुस्तक पढ़ते हुए अनेक तरह के चित्र पाठकों के सम्मुख उभरते हैं... कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि लेखक ने बहुत मेहनत तथा शिद्दत से इस ऐतिहासिक ग्रन्थ को पूरा किया है, जिसकी आज बहुजन समाज को बेहद आवश्यकता है।'[5]

दलित चेतना के इतिहास में एक मील का पत्थर

यह किताब दलित चेतना के इतिहास में एक मील के पत्थर का काम करेगी... हिन्दू धर्म और संस्कृति की इतनी तीखी व क्रमबद्ध आलोचना हिंदी साहित्य में पहली बार पाठकों को पढने को मिली...यह किताब ब्राह्मण, ब्राह्मणवाद और आर्यों की अनेक छुपी हुई योजनाओं (Hidden agend), जिन्हें वे पिछले 3000 साल से छुपाने में कामयाब रहे, बहुजन समाज के सामने लाती है।'[6] राष्ट्रीय सहारा ने इस ऐतिहासिक ग्रन्थ पर लिखा था,'यह पुस्तक जाति व्यवस्था की वस्तुगत समीक्षा करती है तथा उन कारणों की छानबीन करती है जो जाति वयवस्था आधारित बर्बर समाज को न केवल बचाए रखने बल्कि मजबूत बनाने में प्रमुख भूमिका निभाते रहे हैं...दरअसल यह अनूठी किताब गोसाई जी के उस पत्र के जवाब में लिखी गयी है जो श्री दुसाध को इस असार संसार से विरक्त होने का उपदेश दिए बिना नहीं चूके। लेकिन 600 पृष्ठों में दिया गया जवाब न मनोरंजक है न सेंशेनल और न ही भावुक बल्कि, सूअर चराने वाली जाति के एक बौद्धिक की नई 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' है जो एक भटके हुए मित्र को राह पर लाने के लिए लिखी गई है।[7]

दुसाध जी को ज्ञानपीठ और नोबेल पुरस्कार मिलना चाहिए

इस बेजोड़ पुस्तक की प्रशंसा में तो आंबेडकर मिशन पत्रिका ने कलम ही तोड़कर रख दी। उसने लिखा, 'यह अद्‌भुत किताब पाठकों को समाजशास्त्र, इतिहास और राजनीति के साथ ही साहित्य का सम्पूर्ण रसास्वादन कराती है। इस किताब के लिए दुसाध जी को ज्ञानपीठ और नोबेल पुरस्कार मिलना चाहिए।'[8]

इस ऐतिहासिक ग्रन्थ की लेखकीय में दुसाध ने कहा था,' आदि भारत मुक्ति... ग्रन्थ का रूप लिये गोसाईं जी के नाम पत्र का यह इति नहीं, आरम्भ है। जिन गोसाइयों को आदि भारत मुक्ति के यज्ञ में शामिल करने के अभिप्राय से यह रचना आरम्भ हुई है, उनकी मानसिकता महान वैदिक मनीषियों के वेद, पुराण, स्मृतियों; तुलसी, सूर, मीराबाइयों के भक्ति ग्रंथों; बंकिम, निराला, पन्त और अनेकों अरुण शौरियों की रचनाओं से पुष्ट है। ऐसी मानसिकता में परिवर्तन घटित करने में आदि भारत मुक्ति के 600 पन्ने सफल होंगे, इसमें मुझे खुद संदेह। इसलिए इस पत्र श्रृंखला में डेढ़-दो हजार पृष्ठ और संयोजित करने होंगे।'[9] किन्तु दुसाध जी आदि भारत मुक्ति की श्रृंखला लिखने के बजाय सुप्रसिद्ध दलित चिन्तक चंद्रभान प्रसाद के इस ताने—**आपने तीन साल में एक किताब लिखी है, जो छपकर बमुश्किल चार-पांच सौ लोगों तक पहुंचेगी। मुमकिन है इससे कुछ लोगों की नजरों में आप विद्वान के रूप में स्थापित हो जाएं। लिखने का वर्तमान क्रम यदि जारी रखेंगे तो कई सालों बाद ही जाकर कुछ हजार पाठकों तक आपकी पहुंच हो पयेगी। लेकिन इससे समाज को कितना लाभ मिलेगा? देश में जो रोज-रोज नये मुद्दे खड़े हो रहे हैं, उन पर समाज का मार्गदर्शन कौन करेगा**—से मजबूर होकर पत्रकारीय लेखन से जुड़ने का मन बनाये।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

सितम्बर 2000 में पत्रकारीय लेखन के लिए कलम थामने का उन्होंने निर्णय लिया।'[10] और 12 अक्तूबर, 2000 को 'हिन्दुस्तान' में 'ओलम्पिक और हम' नामक उनका पहला लेख छपा, जिसे देखकर खुद दुसाध जी भी सुखद विस्मय में उछल पड़े थे।[11] हिन्दुस्तान जैसे बड़े दैनिक पत्र में पहला ही लेख छपने के बाद दुसाध जी ने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह जुनून के साथ पत्रकारीय लेखन से जुड़ते गए। उसके बाद जनसत्ता, राष्ट्रीय सहारा, जनसत्ता एक्सप्रेस सहित अन्य कई अखबारों में भी उनके लेख थोड़े-थोड़े अन्तराल पर छपने लगे। इसके अतिरिक्त तमाम दलित पत्रिकाओं में भी उनके लेख दिखने लगे। दुसाध जी ने 2000 के सितम्बर से अखबारी लेखन का जो सिलसिला शुरू किया वह अगस्त, 2003 में दो किताबों 'वर्ण व्यवस्था : एक वितरण व्यवस्था' और ' हिन्दू आरक्षण और बहुजन संघर्ष के रूप में सामने आया।'[12] कहा जा सकता है 'वर्ण-व्यवस्थाः एक वितरण व्यवस्था' दुसाध की ऐसी पहली किताब थी जिसने एक नए दुसाध, पत्रकार दुसाध से दुनिया को अवगत कराया।

'वर्ण व्यवस्थाः एक वितरण व्यवस्था' की भूमिका सुप्रसिद्ध पत्रकार **अभय कुमार दुबे** ने लिखा है। उन्होंने 'अछूत की कसौटी सछूत के लिए' शीर्षक से इसकी भूमिका में लिखा है–

अछूत की कसौटी सछूत के लिए–अभय कुमार दुबे

कुछ किताबें अतीत के बारे में होती हैं और कुछ वर्तमान के बारे में। आजकल भविष्य के बारे में किताबें लिखने का दावा भी किया जाने लगा है। ऐसी किताबें लिखने का दावा करने वालों के लिए यह जरूरी है कि वे एक क्लासिकल किस्म की विद्वता से लैस हों। वे इतिहासज्ञ हो सकते हैं, वर्तमान के भाष्यकार हो सकते हैं और वे भविष्य-दर्शन के सूत्रधार भी हो सकते हैं। लेकिन कुछ किताबें ऐसी भी होती हैं जिनसे पाठक के दिमाग में एक लम्बी लकीर बन जाती है। एक ऐसी लकीर जिसका एक सिरा अतीत में होता है और दूसरा वर्तमान में। किताब गुजरे जमाने और मौजूदा हालात के बीच सफर करती है। बार-बार आगे-पीछे जाती है और हर बार उसका पाठक निरन्तर गतिशीलता से बैचेन होता है। ऐसी किताब से पढ़ने वाले का मानस खदबदा जाता है। जरूरी नहीं कि ऐसी किताब लिखने वाला प्रचलित शैली का विद्वान ही हो। ऐसी किताब का लेखन तो एक विशेष तरह की रचनाशीलता की मांग करता है। वह रचनाशीलता कच्ची और बेतरतीब हो सकती है, निर्बंध हो सकती है। और कभी-कभी शब्दों या वाक्यविन्यास की स्थापित परम्पराओं की अवहेलना भी करती है। ऐसी किताब लिखने से खतरा रहता है। बुद्धिजीवियों की बिरादरी से बहिष्कृत होने का खतरा। सर्वमान्य ज्ञान-मीमांसा की कसौटियों पर खरे न उतर पाने का खतरा और अंततः अक्लमंदों की दुनिया में उपहास का खतरा। ऐसी किताब लिखने वाले की बौद्धिकता खुले आसमान के नीचे सोती है और 'भूकंप के झटके' उसे 'मृदुल' लगते हैं। उसके पास खोने के लिए कुछ नहीं होता। उसे हम दानिशमंदों की दुनिया का सर्वहारा कह सकते हैं।

हमारे समाज के बुद्धिजीवी हलकों में ऐसे लेखक अगर किसी समुदाय से निकलते हें तो दलितों का समुदाय ही होता है। क्योंकि केवल दलित ही हैं जिनके सिर पर सदा-सर्वदा से किसी ज्ञानशास्त्र की छाया नहीं है, जिनकी चेतना पर किसी चिन्तन-परम्परा का बोझ नहीं है, जो खुद को किसी भाषा और किसी अभिव्यक्ति का ऋणी नहीं समझते और जो अतीत से लेकर वर्तमान तक हर देश-काल में स्थित होते हुए भी उससे बाहर उसके हाशिये पर रहते आए हैं। ऐसे ही एक लेखक और टिप्पणीकार है एच. एल. दुसाध, जिनकी रचनाओं के संकलन 'वर्ण व्यवस्था : एक वितरण व्यवस्था' का अध्ययन करने पर पता लगता है कि उनकी रचनाशीलता इतिहास, स्मृति मिथक और समकालीनता के उन्हीं पहलुओं से सम्पन्न है, जो स्थापित बौद्धिकता की श्रेणी में नहीं आते। न सार की और न रूप की दृष्टि से। यह एक अछूत द्वारा लिखी गई किताब है, जो अ-द्विज शूद्रों को सछूत के नाम से सम्बोधित करने की जुर्रत करता है और एक व्यापक फलक पर पूरे हिन्दू समाज को दो श्रेणियों में विभक्त करके ऐसे विमर्श की नयी कड़ी बनाता है, जो कभी बाबा साहेब आंबेडकर ने अपनी छः पंक्तियों में व्यक्त किया था–

हिन्दुओं को चाहिए थे वेद,
इसलिए उन्होंने व्यास को बुलाया जो सवर्ण नहीं थे।
हिन्दुओं को चाहिए थे महाकाव्य,
इसलिए उन्होंने वाल्मीकि को बुलाया जो खूद अछूत थे।
हिन्दुओं को चाहिए था एक संविधान,
और उन्होंने मुझे बुला भेजा।

आंबेडकर की इस कृति को मैं आधुनिक दलित रचनाशीलता की आदि-पंक्तियां मानता हूं। यह कविता भी दिमाग में एक लकीर बना देती है और अतीत से वर्तमान के बीच आगे-पीछे सफर करती है। इस विशिष्ट रचनाशीलता के बहुत से हस्ताक्षर

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

हमारे सामने हैं। नामदेव ढसाल की भीषण काव्यात्मक उग्रता, बाबूराव बागुल का विद्रोही कृतित्व, शरण कुमार लिंबाले के सौन्दर्यशास्त्रीय विमर्श, डी. आर. नागराज के असाधारण रूपक विधान, गोपाल गुरु के दार्शनिक रुझानों और चन्द्रभान प्रसाद की रेडिकल कुशाग्रता में इन्हें देखा जा सकता है। एच.एल. दुसाध इसी सिलसिले को आगे बढ़ाते हैं। 'वर्ण व्यवस्था : एक वितरण व्यवस्था' ऐसे बयानों को लेकर आती है जो सिर्फ एक दलित लेखक ही जारी कर सकता है क्योंकि समाज उसे अपने बीच एक खास ढंग से स्थित रहने के लिए मजबूर करता है। दुसाध की किताब पढ़ने के बाद खुद को दलित आन्दोलन का हमसफर मानने वाला मेरे जैसा लेखक यह स्वीकार करने को मजबूर है कि समान सूचनाएं और जानकारियां उपलब्ध होने पर भी वह परिस्थितियां और घटनाओं को इस कोण से नहीं देख सकता, जिस कोण से दुसाध उन्हें आसानी से देख लेते हैं।[13]

दुसाध : हिन्दू पत्रकारिता के लिए एक बड़ी चुनौती

वर्ण व्यवस्था : एक वितरण व्यवस्था की प्रकाशकीय में सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् **शांति स्वरुप बौद्ध** ने लिखा है—एच.एल. दुसाध जी एक ऐसे अकेले रचनाकार हैं, जो विचारों का निर्माण करने वाली पक्षपाती मीडिया को आड़े हाथ लेकर दलितों-पिछड़ों के चहेते चिन्तक व साहित्यकार बन गए हैं। भारतीय मीडिया की अमानवीयता एवं संवेदनहीनता को दुसाध जी जैसे जीवट वाले लेखक ही उजागर कर सकते हैं। मीडिया के क्रूर पापों से पर्दा हटाने के लिए दुसाध जी को कोटि-कोटि साधुवाद देता हूँ... दुसाध जी ने इस पुस्तक में हू-ब-हू मेरी भावनाओं के आस-पास रहकर ही वर्ण-व्यवस्था पर बेबाक लेखनी चलाकर, मनुवाद का वीभत्स व क्रूर स्वरूप पर अचूक निशाना साधा है। मैं दुसाध जी की इस विशिष्ट शैली का कायल हुए बिना न रह सका। उनकी रचनाधर्मिता का प्रभाव यदि आपके सिर भी चढ़कर बोलने लगे तो यह अकारण नहीं होगा। जितने अधिक विषयों की तथ्यपरक प्रस्तुत करने का काम दुसाध जी की लेखनी ने किया है, वैसी विलक्षण क्षमता अन्य दलित-गैर दलित लेखकों में देख पाना दुर्लभ है। उन्होंने खोजपूर्ण शैली में लिखकर दलित चिंतन की जो गौरव वृद्धि का कार्य किया है, वह कार्य इतना इतना प्रभावी है, जो स्वतः ही हिन्दू पत्रकारिता के लिए एक बड़ा चुनौती बन गया है।'[14]

2003 के बाद 2004 में दुसाध जी की अगली पुस्तक प्रकाशित हुई 'भारत के मूलनिवासी और आर्य आक्रमण', जो सुप्रसिद्ध इतिहासकार एस.के. बिश्वास की बांग्ला में इतिहास विषयक चर्चित रचना 'से कालेर भारत वर्ष व आर्य आक्रमण' का हिंदी अनुवाद थी। उसके बाद उनकी तीन किताबें एक साथ आईं फरवरी, 2005 में। वैसे ती दुसाध जी की विगत छः-सात सालों से हर वर्ष वैसे तो औसतन पांच किताबें आ रही हैं। किन्तु उनका सर्वश्रेष्ठ वर्ष 2005 ही कहा जा सकता जब तीन भिन्न विषयों पर उनकी तीन ऐसी किताबें आईं जो खुद में मील का पत्थर थीं। इनमें से शायद सबसे प्रमुख थी 'डाइवर्सिटी : दलित सशक्तीकरण का सर्वोत्तम उपाय'। यूं तो दुसाध जी डाइवर्सिटी पर केन्द्रित 60 से अधिक किताबें तैयार की हैं पर, पाठकों का सर्वाधिक प्यार इस ऐतिहासिक किताब को ही मिला। इसकी भूमिका में सुप्रसिद्ध दलित चिन्तक और भारत में डाइवर्सिटी के जनक **चंद्रभान प्रसाद** ने लिखा है—:

डाइवर्सिटी पर केन्द्रित भारत की पहली किताब

'दलित डाइवर्सिटी के अभियान में, मेरे विद्वान मित्र एच.एल. दुसाध वर्ष 2000 से ही साथ रहे हैं। तथा डाइवर्सिटी अभियान की हर मंजिल से जुड़े रहे, इसकी प्रगति को अपनी आँखों से देखा है। मूलतः पुस्तक लेखन करने वाले मित्र दुसाध जी को मैं ही अखबारी लेखन के लिए उकसाता रहा, तथा इन्होंने अच्छी शुरुआत की है। मेरी ही तरह इनके जेहन में डाइवर्सिटी बैठ गयी है, क्योंकि इसी में दलितों का स्वर्णिम भविष्य दीखता है।

इस पुस्तक में एक से एक लेख हैं, कुछ प्रकाशित, कुछ अप्रकाशित पर, सबका तत्व डाइवर्सिटी है। 'विनिवेश पर मौन दलित आन्दोलनकारी' नामक लेख में दुसाध जी दलित आन्दोलनकारियों को ललकारते हुए लिखते हैं—'खुद विनिवेश मंत्री अरुण शौरी जब विनिवेश के पक्ष में अमेरिका का बार-बार उदहारण दे रहे हैं, तो अमेरिकी दलितों का हवाला देकर भारत के दलित डाइवर्सिटी लागू करने की मांग क्यों नहीं कर सकते?'

उम्मीद है कि यह पुस्तक जहां दलित लेखकों, चिंतकों, आन्दोलनकारियों को झकझोरेगी, वहीं शासन करने वालों को कठघरे में खड़ा करेगी। दलित लेखन का अर्थ दलितों के लिए और अधिकार जीतने के लक्ष्य को लेकर होना चाहिए, इस पुस्तक के माध्यम से दुसाध जी एक नया रास्ता दिखा रहे हैं। अगर वास्तव में दलित आन्दोलन का लक्ष्य सामाजिक परिवर्तन है और उसका सम्बन्ध प्रधानतः आर्थिक बदलाव से है तो निश्चय ही यह पुस्तक दलित लेखकों और आन्दोलनकारियों को आत्म निरिक्षण के लिए प्रेरित करेगी। चूँकि यह डाइवर्सिटी पर केन्द्रित भारत की पहली किताब है, इसलिए भी इसका ऐतिहासिक महत्त्व है।'[15]

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

दलित आन्दोलनकारियों के लिए धारदार हथियार

पुस्तक 'डाइवर्सिटी : दलित सशक्तिकरण' के शुभेच्छा सन्देश देते हुए पूर्व केन्द्रीय मंत्री **डॉ. संजय पासवान** ने लिखा था—'विगत दो वर्षों की छोटी सी अवधि में मैंने देखा कि दुसाध जी ने पत्रकारिता की दुनिया में लम्बी छलांग ले ली है। राजनीति, अर्थ-नीति, शिक्षा-नीति, भूमंडलीकरण, फिल्म-टीवी, फुटबाल, क्रिकेट, ओलम्पिक, साहित्य के प्रश्न, धर्म से जुड़ी घटनाएं इत्यादि ढेरों विषयों पर एक विशेषज्ञ की भांति टिपण्णी करके न सिर्फ नामी-गिरामी पत्रकारों की भीड़ से अलग अपना एक मुकाम बना लिया है बल्कि, कईयों के अनुसार हिंदी पत्रकारिता में एक नया अध्याय जोड़ दिया है। लेकिन विविध विषयों पर लेखन करने के बावजूद डाइवर्सिटी की हिमायत से दूर नहीं भागे। इस पुस्तक को पढ़कर तो ऐसा लगता है कि राष्ट्र के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में डाइवर्सिटी लागू करवाने की उनकी शिद्दत की चाह ने ही उन्हें अपनी पत्रकारिता के दायरे को व्यापकतर करने के लिए बाध्य किया है। भूमंडलीकरण के भयावह दौर में दलितों की वजूद रक्षा के लिए दुसाध जी ने जितने प्रभावशाली तरीके से डाइवर्सिटी की जरुरत का अहसास कराया है, उतने ही प्रभावशाली तरीके से डाइवर्सिटी के खिलाफ कलम चलाने वाले बुद्धिजीवियों को निरुत्तर भी किया है। इस पुस्तक में प्रकशित 'लोकतंत्र की सलामती के लिए : डाइवर्सिटी', 'अस्पृश्यता के प्रतिकार के लिए : डाइवर्सिटी', 'दलित उत्पीड़न से निजात के लिए : डाइवर्सिटी' जैसे लेख जहां डाइवर्सिटी की जरुरत का अहसास करते हैं, वहीं 'बहुराष्ट्रीय कंपनियों से निजात के लिए : डाइवर्सिटी' और 'विदेशी निवेश में पूर्व शर्त : डाइवर्सिटी' जैसे लेख बहुराष्ट्रीय निगमों के खिलाफ लड़ाई का नया हथियार सुलभ कराते हैं।

यह पुस्तक दलित आन्दोलनकारियों के लिए धारदार हथियार साबित होगी इसलिए इसका अधिक से अधिक भाषाओँ में अनुवाद होना चाहिए। दलितों की सबलीकरण की दिशा में दुसाध जी का यह दुरूसाध्य प्रयास सफल हो, यही मेरी आन्तरिक कामना है।'[16]

विस्मित हुए पाठक

इस किताब ने तो पाठकों को विस्मित ही कर दिया। उन्हें लगा इसी के जरिये समतामूलक समाज का निर्माण हो सकता है। इस पर राय देते हुए जैसो, पंजाब के पत्रकार मंजीत मांडिया ने लिखा-'मैं आपकी डाइवर्सिटी। पुस्तक पढ़ रहा हूँ। अभी तीन चौथाई ही पढ़ पाया हूँ मगर, इतना ही पढ़कर आपको पत्र लिखने से रोक नहीं पाया। इस पुस्तक के माध्यम से आपने जो डाइवर्सिटी का सिद्धांत अपनाने पर बल दिया है इसके बारे में हमने कभी सोचा या सुना नहीं था। इससे तो निश्चित रूप से बहुजनों में उद्योग-व्यापार, ठेका, डीलरशिप, फिल्म-टीवी, मीडिया वगैरह में हिस्सेदारी लेने का जज्बा पैदा होगा। लेकिन मन में बार-बार प्रश्न उठता है कि मनुवादी आर्यों के हाथों में जकड़े भारत में यह लागू कैसे होगा? क्या ऐसा संभव हो पायेगा! इस नए सिद्धांत को बहुजन समाज के सामने पेश करने के लिए आपको कोटि-कोटि धन्यवाद।'[17]

भूमंडलीकरण की अर्थनीति की मुकम्मल काट

पटना के एक पूर्व दलित मार्क्सवादी का कहना था,'दुसाध जी, मैंने सर्वहारा के लिए वर्षों जेल में रखकर अपनी जिंदगी तबाह कर ली। दर्जन भर से अधिक साथियों के गोली खाकर मरने का गम भी झेला पर, सर्वहारा के जीवन में बदलाव न देख सका। इतनी बर्बादी के बाद सामाजिक बदलाव का जो सपना पूरा होते न देख सका, आपकी किताब पढने के बाद उसके पूरा होने की आखरी उम्मीद सिर्फ डाइवर्सिटी में नजर आ रही है।' अखिल भारतीय पासवान महासभा,लखनऊ के अध्यक्ष **प्रभुलाल पासवान** की राय इस पुस्तक के विषय में यह थी—'अगर साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ाई को नजरअंदाज कर दिया जाय तो जाति समाज के सर्वहाराओं की मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय डाइवर्सिटी सिद्धांत में ही है।'[18] चिंतक, लेखक व आंबेडकर मिशन पत्रिका, पटना के संपादक **बुद्ध शरण हंस** ने तो खुलकर अपनी पत्रिका में लिखा—'बहुजनों को हजारों साल से धन-धरती, उद्योग- व्यापार से वंचित करने वाले आर्यों के जाति—अर्थशास्त्र (वर्ण- व्यवस्था) और आरक्षण के खात्मे के इरादे उनके द्वारा अपनाई गयी भूमंडलीकरण की नीति की मुकम्मल काट है यह पुस्तक। इससे मूलनिवासियों का देश की पूँजी, उद्योग-व्यापार, मीडिया, फिल्म-टीवी इत्यादि सभी गतिविधियों में हिस्सेदारी का रास्ता साफ होगा।'[19]

हिंदुत्व की राजनीति पर विशालतम रचना : सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिंदुत्व

7 अगस्त, 1990 को मंडल की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद से 'जाति' के बाद 'हिंदुत्व' भारतीय राजनीति और बौद्धिक विमर्श का केन्द्रीय विषय बन गया। शायद ही कोई ऐसा लेखक होगा जिसने मंडल उत्तरकाल में हिंदुत्व की राजनीति पर कलम नहीं चलाया होगा। किन्तु इस मामले में सबको पीछे कोई छोड़ा तो वह दुसाध

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

जी ही हैं। हिंदुत्व की राजनीति पर जो भूरि-भूरि लेखन हुआ उसमें सबसे बड़ी किताब देने का श्रेय प्राख्यात पत्रकार प्रभाष जोशी को रहा। 2003 में प्रकाशित उनकी 654 पृष्ठीय पुस्तक 'हिन्दू होने का धर्म', जो दस सालों में जनसत्ता में उनके द्वारा लिखे गए लेखों का संग्रह है, को हिंदुत्व की राजनीति पर सबसे बड़ी किताब के रूप में सम्मान मिला। किन्तु इसी विषय पर 2005 के फरवरी में 'सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिंदुत्व' नामक एच.एल.दुसाध की जो पुस्तक बाजार में आई वह 604 पृष्ठों की रही, जो महज चार सालों में उनके द्वारा हिंदुत्व की राजनीति पर की गयी टिप्पणियों का संग्रह थी। बाद में मार्च 2013 में जब इस किताब का प्रवर्द्धित संस्करण प्रकाशित हुआ तो किताब 1000 पृष्ठों की हो गयी। आज इस विषय पर उनका लेखन डेढ़ हजार पृष्ठों से भी ज्यादा हो गया है। इस तरह कहा जा सकता कि हिंदुत्व की राजनीति पर लेखन करने में दुसाध जी ने देश के तमाम लेखकों को बहुत पीछे छोड़ दिया है। उनका इस विषय पर लेखन मात्रा में तो सबसे ज्यादा है ही, गुणवत्ता के लिहाज से भी लाजवाब है। इस महत्वपूर्ण पुस्तक की भूमिका **प्रोफेसर वीरभारत तलवार** ने लिखी थी। इस विशाल पुस्तक की 15 पृष्ठों में लिखी भूमिका में वह शुरुआत में ही लिखते हैं—

हिंदी पत्रकारिता में एक नया अध्याय

'पिछले पचास सालों में धीरे-धीरे फैली और विकसित हुई दलित चेतना की जैसी अभिव्यक्ति राजनीति और साहित्य के क्षेत्र में हुई, वैसी अभी तक दूसरे क्षेत्रों में नहीं हो पाई है। लेकिन 21 वीं सदी की शुरुआत के साथ ऐसे संकेत मिलने लगे हैं जिनसे लगता है कि इन क्षेत्रों में भी दलितों का प्रवेश जल्द होगा। इनमें से एक क्षेत्र पत्रकारिता का है जिसमें दलितों का प्रवेश वास्तव में शुरू हो चुका है।

हिंदी पत्रकारिता में दलितों ने अभी तक अपना कोई बड़ा इलाका कायम नहीं किया है। हिंदी प्रेस और पत्रकारिता के 99 प्रतिशत हिस्से पर अब भी द्विजों का ही बोलबाला है। फिर भी जो थोड़े से दलित पत्रकार उभरकर सामने आ रहे हैं और प्रेस पत्रकारिता से जुड़े कई सवर्णों ने भी उनके प्रति जैसा स्वागत भाव दिखाया है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। यों तो मोहनदास नैमिशराय पुराने पत्रकार है। उन्होंने अपने लेखन की शुरुआत ही पत्रकारिता से की थी, लेकिन हिंदी समाज उन्हें उनकी पत्रकारिता से कम, उनकी मशहूर आत्मकथा अपने-अपने पिंजरे से ज्यादा जानता है। डॉ. श्योराज सिंह बेचैन ने दलित पत्रकारिता पर शोध किया है, लेकिन खुद पत्रकारिता नहीं की। फिलहाल दिल्ली और दिल्ली के आस-पास से निकलने वाले हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में तीन महत्वपूर्ण दलित नाम उभरकर आये हैं। कंवल भारती, चन्द्रभान प्रसाद और एच.एल. दुसाध। आज दलित पत्रकारिता इन्ही के नामों से जानी जा रही है। इनमें से चन्द्रभान प्रसाद मुख्य रूप से दलित चिन्तक और सिद्धांतकार हैं। कंवल भारती कवि, साहित्यकार भी हैं और पत्रकार भी। अकेले एच.एल. दुसाध ही ऐसे हैं जो पूरी तरह पत्रकारिता के प्रति समर्पित हैं।

एच.एल.दुसाध की पत्रकारिता में जिस बात पर ध्यान सबसे पहले जाता है वह है, उनकी पत्रकारिता का लम्बा चौड़ा दायरा। यह सचमुच एक सुखद आश्चर्य है कि बिलकुल शुरूआती दौर में भी एक दलित पत्रकार इतने ज्यादा विषयों पर अधिकारपूर्वक अपनी कलम चलाता है। एच.एल.दुसाध सिर्फ दलितों के उत्थान से संबंधित कार्यक्रमों तक सीमित न रहकर जीवन और समाज के लगभग सभी क्षेत्रों को अपनी पत्रकारिता के दायरे में लाते हैं। यह दायरा इतना बड़ा है कि इसमें विभिन्न दलों की राजनीति, साहित्य के प्रश्न, फिल्म, क्रिकेट, ओलम्पिक, टीवी, शिक्षानीति, धर्म से जुड़ी घटनाएं, भू-मंडलीकरण और अर्थनीति सभी कुछ आ जाता है। दुसाध की पत्रकारिता में जो व्यापक दायरा है, अनगिनत विषय हैं, उन पर लिखने ज्ञान और योग्यता है, पैनी दृष्टि और ताजगी है—वह सब स्वागत योग्य है। इसने हिदी पत्रकारिता में एक नया अध्याय जोड़ा है।'[20]

सामाजिक परिवर्तन और बीएसपी

फरवरी, 2005 में 'डाइवर्सिटी : दलित सशक्तीकरण का सर्वोत्तम औंजार' और 'सामाजिक परिवर्तन में बाधक : हिंदुत्व' के साथ जो तीसरी किताब आई थी, वह थी 'सामाजिक परिवर्तन और बीएसपी'। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि एच. एल. दुसाध ने बीएसपी के पक्ष में जिस पैमाने पर लेखन किया है, वैसा अन्य किसी राजनीतिक दल के पक्ष में और किसी लेखक ने नहीं किया है। बहरहाल बीएसपी पर दुसाध जी के लेखन का जब भी जिक्र छिड़ता है लोगों के जेहन में सबसे पहले 'कांशीरामवाद को साकार करती एक जिन्दा देवी : मायावती' जैसी पुस्तक का नाम उभरता है। इस पुस्तक को लेकर खासा विवाद हुआ था। यही वह पुस्तक है जिससे एक जिन्दा देवी के रूप में मायावती की छवि स्थापित हुई एवं बहुतों ने इसे राजनीतिक लेखन का एक दुर्लभ दस्तावेज करार दिया। किन्तु राजनीति के गंभीर विद्यार्थी बीएसपी पर लिखी दुसाध की जिस पुस्तक का जिक्र बेहद सम्मान के साथ करते हैं, वह 'सामाजिक परिवर्तन और बीएसपी' ही है।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

यह पुस्तक समय-समय पर राष्ट्रीय दैनिक पत्रों और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे लेखों का संग्रह है, जिसमें बीएसपी के मिशन, संघर्ष और विचार बहुत ही व्यापकतर रूप से उभर कर राष्ट्र के समक्ष आया है। इस पुस्तक की भूमिका जेएनयू के प्राख्यात समाज शास्त्री **प्रोफेसर विवेक कुमार** ने लिखा है। आठ पृष्ठों में लिखी भूमिका में डॉ. कुमार कहते हैं–

दुसाध का ओरिजिनल आंकलन

'ब्राह्मणवाद से टकराने तथा उसका विनाश करने हेतु दुसाध फुले,पेरियार तथा अंबेडकर इत्यादि दलित एवं पिछड़े समुदाय के चिंतकों एवं मनीषियों के विचारों को प्रेषित करते हैं। परन्तु उनके विचारों का आंकलन दुसाध का अपना ओरिजिनल आंकलन है। वे किसी स्थापित विचारक एवं मनीषी से उधार नहीं मांगते। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है उनकी अपनी शब्दावली तथा अपने सिद्धांत। जैसे दलितों की दयनीय दशा को वे 'दैविक दासता' का शिकार कहकर परिभाषित करते हैं। अपने शैक्षणिक जीवन में मैंने यह शब्द या कॉन्सेप्ट पहले कभी नहीं सुना।'[21]

दुसाध : अत्यंत उच्चकोटि के थियोरेटीशियन

दुसाध का भारतीय सामाजिक व्यवस्था का आंकलन सामान्य दलित आंकलनों से मात्रात्मक रूप से भिन्न है, जो अत्यंत उच्चकोटि के थियोरेटीशियन के कलम का कमाल है। वरना साधारणतया दलित समुदाय समाज में अपनी सामाजिक व्यवस्था को सामाजिक वंचना के एकांगी दृष्टिकोण से देखता है। परन्तु दुसाध इसे वितरण-व्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, शैक्षणिक संस्थाओं की समग्रता में परिभाषित करते हैं। वितरण (Distribution) तथा आरक्षण (Reservation) के अंतरद्वंदवाद (Dilecticism) को अभी तक भारतीय व्यवस्था में किसी ने चिन्हित नहीं किया था। इसलिए दुसाध अपनी बुद्धि तथा पैनी दृष्टि दोनों के लिए ही बधाई के पात्र हैं।'[22]

सवर्ण लेखकों से भिन्न आंकलन

एच. एल. दुसाध के लेखों का संग्रह उनकी सामाजिक संरचना में आवंटित परिस्थिति के कारण विकसित चेतना को अभिव्यक्त करता है। इस कारण ही वे भारतीय समाज में घटित होने वाले अनेक कालक्रमों का सवर्ण लेखकों से भिन्न रूप में आंकलन करते हैं। इसीलिए ही भारतीय समाज में जाति के इस्तेमाल को जहां सवर्ण लेखक मानवता का कलंक कहकर परिभाषित करते हैं, वहीं दुसाध उसे 'जाति चेतना का राजनीतिकरण' कह कर उसे वंचित जातियों के उत्थान का मार्ग परिभाषित करते हैं।'[23]

बसपा को भारतीय संरचनात्मक परिवर्तन के एक कारक के रूप में, हिंदी में किसी लेखक ने ऐसा अध्ययन नहीं किया

दुसाध की लेखनी सत्यता को सवर्णों से भिन्न रूप में परिभाषित करती है, उसका दूसरा उदहारण है 'बहुजन समाज पार्टी' का वस्तुनिष्ठ आंकलन। ज्यादातर बुद्धिजीवी सवर्ण एवं दलित बसपा के आन्दोलन को समझने में कामयाब नहीं हो पा रहे हैं। कुछ जानबूझ कर, कुछ अनजाने में परन्तु दुसाध उन चंद दलित लेखकों में से एक हैं, जो भारतीय समाज में बसपा के कालक्रम को समग्रता तथा उसके निहितार्थों को भलीभांति समझते हैं। मैं नहीं समझता कि हिंदी लेखन में बसपा को भारतीय संरचनात्मक परिवर्तन के एक कारक के रूप में, किसी लेखक ने ऐसा अध्ययन किया है।'[24] ...उनका मानना है कि बसपा द्वारा जिस क्रान्ति की शुरुआत की गयी है, वह विश्व की अनेक क्रांतियों से भिन्न है। दुसाध के अनुसार, दुनिया में ज्यादातर क्रांतियां समाज के निम्नतर स्तर पर पड़े लोगों को साथ लेकर हुईं हैं। फ्रांस की राज्य क्रान्ति या माओ की द्वारा चीन की क्रांति समाज के नीचले स्तर के लोगों को लेकर हुईं। पर, कांशीराम ने भारत में क्रान्ति के इस सूत्र को उलट कर समाज के सबसे उत्पीड़ित वर्ग के पढ़े-लिखे लोगों को अपना साथी बनाया। यानी कि दलित मध्य वर्ग ने इस क्रांति में योगदान किया। दलित मध्य वर्ग द्वारा क्रांति के आगाज का रहस्योदघाटन कर दुसाध मार्क्स के वर्ग संघर्ष को ही खारिज कर देते हैं और यह बताते हैं कि समाज में व्यक्तियों के मध्य समाज के ऋण से मुक्त होने की भावना भरा जाय, तो भी क्रान्ति संभव है न कि शोषितों को उनका शोषण याद दिलाने से क्रान्ति आती है। है न नवीन परिकल्पना!'[25]।..जाति की वंचना होते हुए भी योग्य दलितों को जाति के नाम पर क्रीड़ा जगत से कैसे वंचित किया गया, इसकी अद्भुत विवेचना दुसाध ने की है।'[26]

दुसाध पत्रकार या किसी विश्वविद्यालय का प्रोफेसर!

वैसे दुसाध की नवीन परिकल्पनाओं, संरचनाओं तथा वस्तुनिष्ठ आंकलन को किताब की भूमिका में समेटना संभव नहीं। क्योंकि एक स्वतंत्र पत्रकार के रूप में उनके लेखों के मुद्दों का क्षितिज इतना व्यापक है कि औसत दर्जे के बुद्धिजीवी द्वारा उसका

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

विश्लेषण संभव है ही नहीं। दुसाध के ज्ञान एवं सामान्य विज्ञान का कैनवस यू. पी. से लेकर यू.एस.ए. तक है। छोटी से छोटी गाँव की जानकारी से लेकर अन्तराष्ट्रीय स्तर पर अश्वेतों का फिल्मों में योगदान या आर्थिक जगत में 'डाइवर्सिटी प्रिंसिपल 'सभी पर उनका समान अधिकार है। उनके सूक्ष्मतम तथा उच्चतम स्तरों के ज्ञान को पढ़कर पाठक यह सोचने पर मजबूर होगा कि वह पत्रकार हैं या किसी विश्वविद्यालय का प्रोफेसर। यहाँ मैं पत्रकार एवं प्रोफेसर की तुलना नहीं, बल्कि जर्नलिस्ट एवं विशेषज्ञ की तुलना कर रहा हूँ। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यदपि दुसाध जर्नलिस्ट हैं, फिर भी वे अपने लेखों में किसी भी विषय के विशेषज्ञ की भांति ही विषय की बारीकियों को विश्लेषित करते हैं। क्या दुसाध के लिए कोई समाचार पत्र जगह बनाएगा?जबकि दुसाध उत्तर जानते हैं, फिर भी समय एवं समाज की धारा के विरुद्ध उनका लेखन जारी है, जो उनके असामान्य संबल, कुशाग्रता तथा निष्काम क्रिया का प्रतीक है। इस असामान्य संबल के बल पर ही दुसाध ने स्वतंत्र पत्रकारिता में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है और आज वह दलित समाज के अग्रणी स्वतंत्र पत्रकारों में हैं। इसलिए ही आप दुसाध के लेखों से प्रेम कर सकते हैं या ईर्ष्या पर, आप उनको कभी भूल नहीं सकते।'[27]

दलित और बहुजनों से जुड़ी पत्रकारिता के साम्राज्य पर दुसाध का एकछत्र राज

वर्ण व्यवस्था : एक वितरण व्यवस्था के लगभग डेढ़ साल बाद प्रकाशित ' सामाजिक परिवर्तन और बीएसपी' की प्रकाशकीय लिखते हुए एक बार फिर बौद्ध विद्वान **शांति स्वरूप बौद्ध** ने लेखक-पत्रकार दुसाध की प्रशंसा में कलम तोड़ते हुए लिखा-'दलित पत्रकारिता के क्षेत्र में एच. एल. दुसाध जी जैसे जीवट के लोग विरले ही होंगे। एक-एक करके दलितों से जुड़ी समस्यायों को निर्भीकता के साथ उठाने वाले दुसाध जी कभी आगा-पीछा नहीं देखते, अर्थात रणक्षेत्र में जूझ रहे योद्धा की भांति सदा अपने मारक विचारों का प्रहार करते ही रहते हैं। मुझे याद नहीं आता कि मनुवाद और मनुवादियों की कुटिल नीतियों पर दुसाध जी से अधिक वज्र प्रहार किसी और ने किया होगा। बहुजनों की हिमायत में किसी से भी टकरा जाने की हिम्मत दुसाध जी में ही देखने को मिलती है।

बीएसपी कुछ लोगों के लिए केवल राजनीति का ही माध्यम हो सकती है। ऐसे लोगों ने बीएसपी से अपनी हित साधता न देखकर इस पार्टी से दूरी बनाकर रखना ही श्रेयकर समझा। ऐसी निराशाजनक स्थिति ने सर्व प्रथम दुसाध जी को ही उद्वेलित किया और वे पूर्ण निष्ठा और प्रतिबद्धता के साथ बीएसपी के ध्वजवाहक के रूप में प्रकट होते हैं। आज यह खरा सत्य है कि जहां बहुजनों और बहुजन समाज पार्टी की पत्रकारिता के सम्बन्ध में चर्चा छिड़ती है तो, दुसाध जी का नाम स्वतः जबान पर आ जाता है। मैं इस बात को उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि अथवा कमाई मानता हूँ। आज हम पाते हैं दलित और बहुजनों से जुड़ी पत्रकारिता के साम्राज्य पर दुसाध जी का एकछत्र राज्य है।'[28]

संदर्भ

1. एच.एल.दुसाध,वर्ण-व्यवस्था : एक वितरण व्यवस्था, पृष्ठ-14
2. एच.एल.दुसाध,आदि भारत मुक्ति-बहुजन समाज,पृष्ठ 7
3. वही,पृष्ठ- 8
4. वही,पृष्ठ -11
5. साप्ताहिक पायोनियर, 30 अप्रैल- 6 मई,2003
6. डॉ. जय प्रकाश कर्दम द्वारा सम्पादित दलित साहित्य वार्षिकी,2001
7. राष्ट्रीय सहारा, 23 मई,2003
8. अंबेडकर मिशन पत्रिका,सितम्बर-अक्तूबर,2001
9. एच.एल.दुसाध, वर्ण व्यवस्थारूएक वितरण व्यवस्था,पृष्ठ- 14
10. वही, पृ-17
11. वही, पृ-18
12. वही, पृ.-24
13. वही, पृ-4-5
14. वही, पृ-28-2
15. एच. एल. दुसाध, डाइवर्सिटी : दलित सशक्तीकरण का सर्वोत्तम औंजार, पृष्ठ -8
16. वही, पृ.- 22
17. वही, किताब का बैक कवर
18. वही
19. वही
20. एच.एल. दुसाध,सामाजिक परिवर्तन में बाधक रूहिंदुत्व,पृ-53-54
21. एच.एल.दुसाध,सामाजिक परिवर्तन और बीएसपी,पृ-6
22. वही, पृ-7
23. वही, पृ-8
24. वही, पृ-9
25. वही, पृ-10
26. वही, पृ-10
27. वही, पृ-11-12
28. वही, पृ-32

अध्याय-3

एच.एल. दुसाध : फेसबुक पर सक्रिय विद्वानों की नजर में

1. **Brijpal Bharti**–राजाराम जी मुद्दे पर टिप्पणी करें। दुसाध जी के बारे में राय बनाने से पहले समग्र बहुजन मूवमेन्ट को समझें। बहुजन मूवमेंट गति देने में 50 प्रतिशत योगदान अकेले दुसाध का है। मंचों से घंटों बोलने बालों के मुहं से भागीदारी की हिमायत करने वाले शब्द मुख्यतः दुसाध के ही होते हैं चाहे, वो इसे न स्वीकारें।

—Facebook, 22-3-2017

2. **Kanwal Bharti**–बधाई! किसी को तो मिनी आंबेडकर का खिताब मिला। यह बहुत बड़ी बात है जब कोई प्रशंसक आपको मिनी आंबेडकर कहे, एक बार पुनः बधाई।

—Facebook, 16-2- 2015

3. **Dr. Lal Ratnakar**–दुसाध साहब आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, लेकिन पिछड़े और दलित नेताओं को यह बात कभी समझ में नहीं आएगी कि वह ब्राह्मणवाद की जागीर संभालने नहीं आया है बल्कि, ब्राम्हणवाद को उखाड़ फेंकने आया था और वही काम वह नहीं कर पा रहा है। इसी की परिणति मोदी जी को पिछड़ा बनाकर कराया जा रहा है, जिससे आने वाले दिनों में दलित-पिछड़ा आंदोलन सिर उठाने की कोशिश ही न कर सके। बहुत अफसोस है कि ना तो आपको सुनने वाला कोई है और न समझने वाला। ऐसी स्थिति में सामाजिक न्याय आंदोलन का नव संस्करण जैसा संघ चाहता है, वह मोदी तैयार कर रहे हैं और सदियों-सदियों के लिए इस पूरे आंदोलन को बहुत गहरे तक दफनाने जा रहे हैं।

यह चिंता पिछड़ों-दलितों की है कि वह अपने नेताओं का बहिष्कार कर, नया नेतृत्व खड़ा करके बहुत भयावह दौर से मुकाबला कैसे करें और इसी तरह की स्थिति के लिए आप जैसे लोगों को कुर्बानी देनी होगी। आप जैसा विचारवान व्यक्ति विचारहीन दलित नेतृत्व से कितना बड़ा है पर, आगे क्यों नहीं आता! आइए हम पिछड़ों के साथ आपस में कंधे से कंधा मिलाकर इस लड़ाई को लड़ने के लिये तैयार हैं और मुझे पूरी उम्मीद है कि नई पीढ़ी इसका समर्थन करेगी तथा पुरानी पीढ़ी संरक्षकत्व देगी। मुझे पूरी उम्मीद है कि आपका डाइवर्सिटी मिशन इस मिशन के लिये राजनैतिक दायित्व के लिये आगे आयेगा। हमें तो दुसाध जी जैसा लीडर चाहिए जो बहुजन का दर्द समझता हो।

—Facebook, 27-2-2017

4. **Sobran Kabir**–एक बुद्धजीवि जिसे जातिवदी मीडिया ने स्पेस नहीं दिया।

—Facebook, 3 -8-2016

5. **Shailendra Mani– : बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति**–किसी विषय वस्तु पर अपनी बुद्धि और योग्यता के अनुसार विचारों को प्रकट करना ही ओपीनियन है। किसी विषय पर अपनी राय देना यह निर्भर करता है कि व्यक्ति की उस विषय में क्या विशेषज्ञता है? यदि व्यक्ति उस विषय के प्रति अनजान है तो फिर वह कोई राय देने में पूरी तरह से अक्षम होगा। जैसे किसी केमिकल इंजीनियर से कहा जाय कि वह संस्कृत भाषा और उसकी प्रासंगिकता पर अपने विचार प्रकट करे या फिर किसी भूगोलवेत्ता से कहा जाय कि वह मेंडीलीव की आवर्त सारणी की विवेचना प्रकट करे। इसलिए जो भी व्यक्ति यह कहता है कि ओपीनियन किसी सामाजिक विचारधारा से प्रभावित होती है, बिल्कुल ही निराधार है। क्योंकि व्यक्ति किसी भी सामाजिक परिवेश से आया हो, उससे यदि गणित के विषय में प्रश्न पूछा जाता है तो फिर उसे गणित विषय के अनुसार ही उत्तर देना होगा, न कि वह ज्योतिबा फूले जी की सामाजिक न्याय की परिभाषा बतायेगा। इसलिए विद्यार्थी को गणित विषय का विशेषज्ञ होना चाहिए तभी वह सही प्रत्युत्तर दे पायेगा।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

ओपीनियन विषयानुसार होती है, प्रत्येक व्यक्ति सभी विषयों का विशेषज्ञ नहीं होता है। अर्थात बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति बहुत कम पाये जाते हैं जैसे **एच.एल.दुसाध** और **दिलीप मंडल**। जो बहुमुखी प्रतिभा का होगा वह सभी प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम होगा। बहुमुखी प्रतिभा प्रकृति प्रदत्त होती है। किसी प्रश्न का सही उत्तर हमें तभी प्राप्त होगा जब प्रश्न भी सही होगा और यदि प्रश्न गलत होगा तो उत्तर भी गलत ही होगा।

—Facebook, 14-1-2017

6. **Satish Chandra Gaurav–**मै दो बहुजन लेखकों का कायल हूँ, जो सचाई से लिखते हैं, दिल से लिखते हैं, जो न किसी के बहकावे में लिखते और न पैसो के लिए। जिसको बुरा लगे लगता रहे। चाहे सत्ता पार्टी हो यदि गलत है तो गलत लिखते हैं, यदि सही है तो सही लिखते हैं। ऐसे निर्भीक लेखक हैं श्री दुसाध साहब एवं श्री चंद्र भूषण यादव जी। आप दोनों को मेरा दिल से जय भीम।

—Face book : 25-2-2017

7. **देशदीपक दुसाध :** आँखों में विद्रोह की आग नजर आ रही है। इन आँखों में मुझे मनुवादी व्यवस्था की बर्बादी नजर आ रही है। भारत का भविष्य डाईवर्सिटीमय नजर आ रहा है।
बहुत उदार, बहुत संवेदनशील
डाईवर्सिटी के लिए लड़ते रात दिन
जब अथक चिंतन से मार्क्सवाद, ब्राह्मणवाद, आतंकवाद का तोड़ निकालते हैं।
विरोधी तर्क नहीं जोड़ पाते हैं
ऐसे मानवीय, समर्पित, सामाजिक समरसता के लिए प्रयत्नशील महामानव बहुजनों के लिए दुर्लभ से आगे आते हैं।
मानवता के दुश्मनों को खुलेआम ललकारते हैं।
पूरा बहुजन समाज इनके विचार को आगे बढ़ाएगा
डाईवर्सिटी ही सारे सवालों का जवाब उभरकर आएगा।

—Facebook, 24-3-2014

8. **Mukesh Kumar Kumar–**I want to say only that if your name title to be like H. L. Misra or H L pandy or H L Chauhan instead of Dusadh. Then Dusadh Ji perhaps aap mp rajysabha, padamshree, yash bhari even Bharat ratan tak ka announcement ho jata but Dusadh Ji ap dalit icon ho, 37 crore dalit ap ke sath hain jo award se kahi jyada hai

—Face book, 24-12-2016

9. **Lalajee Nirmal**—राजनीति में मिशन तब नजर आएगा जब दिलीप मंडल, उर्मिलेश, प्रो विवेक कुमार, चंद्रभान प्रसाद, एच एल दुसाध, प्रो कांचा इलैया, प्रो चौथीराम यादव जैसे लोग उच्च सदन में दिखाई देंगे।
10. **Karmendu Shishir–**बड़े भाई अभिवादन। मैंने आपके डाइवर्सिटी के विचारों को समझने की कोशिश की। यह बिल्कुल नयी बात लगी और सबसे अधिक ध्यान खींचा सामाजिक समरसता वाले स्पेस ने। इससे रक्त हीन क्रांति हो सकती है। लेकिन आज एकाधिकार वाली ताकतें अपनी लूट बंदकर जनभागीदारी को कैसे तैयार होंगी! मैं अगले साल अवकाश के बाद इसे और बारीकी से समझना चाहता हूं।
11. **Arvind Kumar Chakrawarti–**सर आपके जैसे अभिभावक जिस देश समाज, जिस परिवार में हो, वो तो वैसे ही धन्य है। आप जैसे महान व्यक्ति की वहज से ही मुझ जैसों को कुछ करने की प्रेरणा और शक्ति मिलती है।
12. **Frank Huzur**—This day in 1953 the Diversity Man of India was born. H L Dusadh Dusadh is one of the greatest public intellectuals and a prolific writer of over 60 books.
His literary discourse has the agenda of subaltern in the centre. Social justice movement is deeply enriched by his volume of political literature. In a country where caste discrimination rules the roots and war for rightful representation of OBCèSC-ST is still being fought on many levels, voice of enlightened commentator like Heera Lal Dusadh becomes the voice of the voiceless.
My intellectual conversation with the Diversity Man Dusadh is always uplifting and inspiring. Reading his works motivate me to read and write more about the cause and concern of the oppressed communities.
Moreover, I am absolutely in awe of his vast reading of world

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

literature, especially sagas of liberation and civil rights movement in the United States of America and elsewhere. Very few language writer in the country are so very animatedly conversant with the legends of black heroes and achievers of Hollywood, Los Angeles and Beverley Hills studios or the success story of blacks in the British and European arts world.

He can talk hour and hour about the feat of Morgan Freeman, Will Smith and Denezel Washington, black powerhouse stars of Hollywood in the same breath as he can mesmerise you with long discourse on Ambedkar, Phule, Periyar, Kanshi Ràm and Behan Mayawati, Lalu Prasad and Akhilesh Yadav. During several rounds of conversation Dusadh saheb has been expressing his concern about the lack of diversity in India media and Bollywood. Genuine grievance I share with him and wonder when Prime time broadcast will have OBC Dalit anchors in India and when Bollywood will have top-billing actors and artists from the largest humanity pool?

Happy birthday, sir. You are a versatile genius. Many more to come. I raise the toast in cheer for you!

13. **Adv Arun Prakash**—Dear respected H L Dusadh Sir I salute you for versatility of your knowledge across politics, art, science, literature, history, sports, film, governance almost everything. You are indeed a great intellectual Sir. Best Regards

14. **Chandra Bhushan Singh Yadav—आइये आपको भारतीय डाइवर्सिटी मैन एच.एल. दुसाध जी से मिलवाते हैं**

20 अक्टूबर 1953 डाइवर्सिटी मैन श्री एच.एल. दुसाध जी का जन्मदिन है। एच.एल. दुसाध जी बहुजन समाज के मूर्धन्य लेखक, विचारक एवं चिंतक हैं। आप ने जिस भी विषय पर चाहा है, उस विषय पर कलम चलाकर उसे किताब की शक्ल दे दिया है। दुसाध जी देवरिया के मूल निवासी हैं पर, कोलकाता में पले-बढ़े-पढ़े हैं। बहुजन समाज के मसायल दुसाध जी को इस तरह से उद्वेलित कर दिए कि वे कंधे में झोला लटका सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष को निकल पड़े। देश भर में सेमिनार, गोष्ठी, लेखन आदि से दुसाध जी ने वंचितों के हक की बातें उठानी शुरू कीं और लगभग साठ से अधिक किताबे लिख डाली।

दुसाध जी 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी' के सिद्धांत के प्रबल हिमायती हैं। प्रत्येक वर्ष दुसाध जी डाइवर्सिटी दिवस मनाते हैं तथा डाइवर्सिटी ईयर बुक निकालते हैं। दुसाध जी जैसा लेखक बिरले होगा क्योकि दुसाध जी जिस विषय पर लिखने की सोच लेते हैं, उस पर ऐसा धांसू लेखन कर डालते हैं कि पढ़ने वाले के दिमाग की बत्ती भक्क से जल जाय।

दुसाध जी का मैंने नाम तो बहुत सुना था लेकिन यह अनुमान नही था कि इतना बड़ा लेखक इतना सरल होगा। मेरी जब दुसाध जी से पहली मुलाकात हुई तो उनसे मिलकर उनकी सरलता का मैं कायल हो गया। दुसाध जी अपने लखनऊ स्थित घर पर मुझसे पहली बार जब मिले तो उन्होंने मेरे पुस्तकालय हेतु दो दर्जन से अधिक अपनी लिखी हुई किताबें दीं।

दुसाध जी ने जब बहुजन नेत्री सुश्री मायावती जी को दलित स्वाभिमान के रक्षक के रूप में पाया तो उन पर बाकायदे एक किताब लिख दिया जिसका शीर्षक था 'एक जिंदा देवी : मायावती'। लेकिन आज जब बहुजन का कॉन्सेप्ट दरका है तो उनकी किताब छपकर आ रही है 'बहुजन राजनीति का पतन।' मैंने दुसाध जी जैसा दूसरा बहुजन चिंतक नही पाया जो बिना किसी लोभ-लिप्सा के अपने समाज के हित हेतु अपनी पूरी बौद्धिक क्षमता लगा रहा हो। दुसाध जी अपने इन्ही गुणों व संघर्षो के कारण भारतीय डाइवर्सिटी मैन के नाम से जाने जाते हैं।

भारतीय डाइवर्सिटी मैन दुसाध जी को मेरी तरफ से जन्मदिन की हार्दिक बधाई एवं सुखी, स्वस्थ, सुदीर्घ, यशस्वी जीवन की कामना है.....

जय भीम!

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

अध्याय-4 : विद्वानों की नजर में : दुसाध का चिंतन

आरक्षण पर एक नया प्रस्ताव

–दिलीप मण्डल

अपने उद्देश्यों को पूरा करने में असफल : आरक्षण की मौजूदा व्यवस्था

अगर आरक्षण का उद्देश्य देश के संसाधनों, अवसरों और राजकाज में समाज के हर समूह की उपस्थिति सुनिश्चित करना है तो, यह बात अब निर्णायक रूप से कही जा सकती है कि आरक्षण की मौजूदा व्यवस्था अपने उद्देश्यों का पूरा करने में असफल हो गई है। सामाजिक न्याय का सिद्धान्त दरअसल वहीं लागू हो सकता है, जहां लोगों (खासकर प्रभावशाली लोगों) की नीयत साफ हो। विशिष्ट सामाजिक बनावट की वजह से भारत जैसे देश में सामाजिक न्याय के सिद्धान्त का असफल होना ही था और यही हुआ भी।

आजादी के पहले से ही भारत में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सरकारी नौकरियों और शिक्षा में आरक्षण लागू है। 1993 के बाद से अन्य पिछड़ा वर्ग यानी ओबीसी के लिए केन्द्र सरकार की नौकरियों में आरक्षण है। 2006 के बाद से केन्द्र सरकार के शिक्षा संस्थानों में अन्य पिछड़ा वर्गों के आरक्षण लागू हो गया। राज्यों के स्तर पर ओबीसी का आरक्षण काफी समय से चला आ रहा है। लेकिन इस तरह के तमाम आरक्षण का नतीजा क्या निकला? भारतीय संविधान के मुताबिक अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए आरक्षण लागू होने के साठ साल बीत चुके हैं और इसी साल 7 अगस्त को मण्डल आयोग की रिपोर्ट लागू होने के दो दशक पूरे होने पर छिटफुट कार्यक्रम आयोजित हो चुके हैं। इस मौके पर देश में आरक्षण नीति और उसके असर की गहन समीक्षा की जानी चाहिए और यह देखा जाना चाहिए कि आरक्षण की नीति दरअसल अपने उद्देश्यों में कहां तक कामयाब रही है।

सरकार और सत्ता आरक्षण नीति की समीक्षा नहीं करती

सरकार और सत्ता अपने कारणों से आरक्षण की नीति की समीक्षा नहीं करती। अन्य पिछड़े वर्गों पर आरक्षण नीति के असर की समीक्षा तो इसलिए भी नामुमकिन है कि किसी को भी यह नहीं मालूम कि ओबीसी का आकंड़ा क्या है। इस देश में ओबीसी के लिए आरक्षण है, ओबीसी वित्त आयोग है, ओबीसी के लिए सरकार की ओर से मामूली-सा ही सही लेकिन बजट है, राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय ओबीसी आयोग है, लेकिन ओबीसी का कोई आंकड़ा नहीं है। चूंकि आकड़ा नहीं है इसलिए योजनाओं का कोई लक्ष्य भी नहीं है। किस राज्य को ओबीसी विकास के लिए कितनी रकम देनी है, और कितनी स्कॉलरशिप देनी है, यह सब ओबीसी की संख्या के आधार पर नहीं, बल्कि राज्य की कुल आबादी के अनुपात में तय होता है। यह बात सरकार लोकसभा और राज्यसभा में कई बार दोहरा चुकी है। कब तक किसी जाति को आरक्षण मिलना चाहिए और किसे नहीं मिलना चाहिए जैसे सवाल भी बिना आंकड़ों के बेमानी हैं। ऐसे सवाल सत्ता के नियंता न पूछते हैं न पूछे जाने पर इसके जवाब देते हैं।

आंकड़ों के अभाव में संपदा-अवसरों के बंटवारे की जानकारी नहीं

आंकड़ों के अभाव में इस देश के संसाधनों, अवसरों और राजकाज में किस जाति और जाति समूह की कितनी हिस्सेदारी है इसका तुलनात्मक अध्ययन सम्भव नहीं है। सैंपल सर्वे यानी नमूना सर्वेक्षण के आंकड़ें इसमें कुछ मदद कर सकते हैं, लेकिन इतने बड़े देश में चार पांच हजार के नमूना सर्वेक्षण से ठोस नतीजे नहीं निकाले जा सकते। इन सीमाओं के बावजूद हम इस देश के अलग-अलग क्षेत्रों में विविधता के होने या न होने के बारे में बहुत कुछ जानते-देखते हैं।

मिसाल के तौर पर केन्द्र सरकार खुद यह बता चुकी है कि केन्द्र सरकार की शीर्ष नौकरशाही के सचिव पद के अधिकारियों में एक भी दलित नहीं है और सिर्फ चार आदिवासी हैं। सरकार की ओर से दी गई जानकारी की वजह से हम यह भी जानते हैं कि केन्द्र सरकार के ग्रुप 'ए' पदों पर सिर्फ 4.7 फीसदी ओबीसी है। हम यह जानते हैं कि के जी. बाला कृष्णन के सेवानिवृत होने के बाद सुप्रीम कोर्ट में अनुसूचित जाति का कोई न्यायाधीश नहीं है। हम अपने अनुभवों या अंदाजे के आधार पर यह अनुमान लगा सकते हैं कि इस देश के अकादमिक क्षेत्र, विश्वविद्यालयों के शैक्षणिक और अशैक्षणिक पदों से लेकर कला-संस्कृति-फिल्मों तक में दलित, आदिवासी और अन्य पिछड़े वर्गों के लोग नाम मात्र के ही है। राज्यपालों और राजदूतों की लिस्ट उठा लें तो भी ऐसी तस्वीर मिलेगी।

अनुभव और अंदाजे के आधार पर यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि इस देश के करोड़पतियों-लखपतियों में भी इन समुदायों की हिस्सेदारी कम होगी। देश के बड़े उद्योगपति, कॉन्ट्रेक्टर और सप्लायर में भी दलित, आदिवासी नाम मात्र के होंगे और अन्य पिछड़े वर्ग के लोग भी संख्या के अनुपात में काफी कम होगे।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

पद्म पुरस्कारों की हर साल जारी होने वाली सूची हो या कोई भी राष्ट्रीय पुरस्कार, आप पाएंगे कि वंचित समुदाय इस सूची से लगभग अनुपस्थित हैं। अनुमान लगाया जा सकता है कि इस देश के पुस्तकालयों में भी इन समुदाय के लोगों की लिखी किताबें बेहद कम होंगी। कोई यह जानकर खुश हो सकता है कि कॉमनवेल्थ खेल आयोजित करने वाली शिखर समिति में न कोई दलित है, न आदिवासी, न ओबीसी और न ही कोई मुसलमान।

दिल्ली विश्वविद्यालय में इस बार ओबीसी की 5400 सीटें योग्य कैंडिडेट न मिलने के नाम पर जनरल कटेगरी की ट्रांसफर कर दी गईं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यलाय में भी लगभग ढ़ाई सौ ओबीसी की सीटें जनरल छात्रों से भरी गईं। विश्वविद्यालयों में दलित, आदिवासी और ओबीसी कोटा किसी न किसी बहाने खाली रखा जाता है। आईआईटी और आईआईएम में यह समस्या और गम्भीर है। समुदायों के स्तर पर यह असन्तुलन लोकजीवन के अलग-अलग और लगभग सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। राजनीति और सफाई के पेशे को अपवाद के तौर पर देख सकते हैं जहां वंचित समुदायों के लोग ज्यादा संख्या में हैं। इनमें से ज्यादातर बातें अनुमान या अनुभव के आधार पर इसलिए भी कहने की जरूरत पड़ती है क्योंकि इस देश में कभी भी यह जानने की कोशिश नहीं की जाती कि देश के अलग-अलग समुदायों की वास्तविक स्थिति क्या है और किन समुदायों को कितना और किस तरह से विशेष अवसर देने की जरूरत है। इस बात को छिपाने पर जोर इतना ज्यादा है कि देश में समाजशास्त्रीय महत्त्व के आंकड़े जुटाने का खुद समाजशास्त्री (अकादमिक क्षेत्र में वंचित समुदायों के लोग नाममात्र ही है) ही विरोध करते हैं। मिसाल के तौर पर, अभी आंकड़ा संग्रह की जो स्थिति है, उसकी वजह से आप यह कभी नहीं जान पाएंगे कि इस देश में कितने लोग जाति के बाहर शादी करते हैं। बहरहाल ठोस आंकड़े न होने पर भी यह बात भरोसे के साथ कहीं जा सकती है कि देश के ज्यादातर संसाधनों, अवसरों और राजपाट (विधायिका को छोड़कर) पर दलित-आदिवासी और ओबीसी की उपस्थिति सुनिश्चित करने में आरक्षण का मौजूदा स्वरूप असफल रहा है।

दुसाध का नया फार्मूला

ऐसे में बहुजन डायवर्सिटी मिशन के अध्यक्ष एच. एल. दुसाध ने समाज में विविधता लाने के लिए एक नया फॉर्मूला दिया है। एच. एल. दुसाध प्रमुख चिन्तक और विचारक हैं और उनकी 38 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनके प्रस्ताव को एक नई पहल के तौर पर देखा जाना चाहिए। उनकी मान्यता है कि आरक्षण देकर कमजोर तबकों को आगे लाने की कोशिशें अब तक अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाई हैं, इसलिए अब आरक्षण को नए तरीके से लागू किया जाना चाहिए। उनका प्रस्ताव है कि इस देश में जितने भी अगड़े हैं (यानी दलित, आदिवासी, अन्य पिछड़े वर्ग और अहिन्दू पिछड़े वर्गों को छोड़कर) उनको संख्यानुपात में आरक्षण दिया जाए। मिसाल के तौर पर, अगर जनगणना से यह पता चलता है कि इस देश में 10, 20 या 30 फीसदी सवर्ण हैं तो इस समूह को उनकी संख्या के हिसाब से 10,20 या 30 फीसदी आरक्षण दिया जाए। आरक्षण की यह अधिकतम सीमा हो।

आरक्षण न सिर्फ सरकारी और निजी क्षेत्र की नौकरियों तथा शिक्षा में बल्कि जीवन के तमाम क्षेत्रों जैसे न्यायपालिका, बैंक से दिए जाने वाल कर्ज, कला, जन-संचार, फिल्म, खेल, कम्पनियों के निदेशक बोर्ड, ठेके, सप्लाई आदि में दिया जाए। इस सम्बन्ध में एच. एल. दुसाध दक्षिण अफ्रीका का उदाहरण देते हैं जहां अन्तरराष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं मे हिस्सा लेने वाले दलों में भी सामाजिक विविधता का ध्यान रखा जाता है। संख्यानुपात में सवर्णों को आरक्षण देना हर दृष्टि से न्यायसंगत है, इसलिए इसका कोई विरोध भी नहीं करेगा। इस व्यवस्था से किसी को भी शिकायत नहीं होगी।

डाइवर्सिटी मिशन का प्रस्ताव

डायवसिटी मिशन का प्रस्ताव है कि इस तरह सवर्ण समुदायों को आरक्षण देने के बाद बाकी समुदायों का वैधानिक समूहों (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य विछड़ा वर्ग, कई राज्यों में अति पिछड़ा वर्ग या अल्पसंख्यकों में पिछड़े आदि) के हिसाब से संख्यानुपात में आरक्षण दिया जाए। इस तरह इस देश में 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी, का फॉर्मूला लागू किया जा सकता है। कुछ बुद्धिजीवियों को इस बात की काफी शिकायत होती है कि अभी आरक्षण का फायदा सम्पन्न लोग उठा लेते हैं। इसका समाधान यह है कि सवर्ण कोटा समेत हर तरह के कोटे में आधी सीटें उन लोगों के लिए हो, जो क्रीमी लेयर यानी मलाईदार तबके में नहीं आते। इस तरह हर समुदाय के गरीबों को अवसरों में बेहतर हिस्सेदारी का मौका मिल पाएगा। लेकिन इस व्यवस्था में किसी भी कारण से एक समुदाय की सीट या अवसर दूसरे समुदाय को नहीं दी जाएगी। और किसी वजह से ऐसा करना जरूरी भी हो जाए तो ऐसी सीटों को दलित या अनुसूचित जाति के प्रार्थी से भरा जाए। नई आरक्षण पद्धति में सिर्फ इस एक भेदभाव की गुंजाइश रखी जा सकती है क्योंकि अगर भेदभाव करना ही है तो उसके हित में किया जाए, जो अब तक सबसे ज्यादा वंचित रहे हैं।

अभी कई जगहों पर जब सिर्फ एक पद हो तो उसे जनरल यानी सामान्य श्रेणी

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

का माना जाता है और ऐसे मामलों में आरक्षण लागू नहीं होता। मिसाल के तौर पर, विश्वविद्यालयों में कुलपति या रजिस्ट्रार का पद ऐसा ही है। नई आरक्षण नीति में देश-भर के सभी विश्वविद्यालयों को एक इकाई मान कर आरक्षण लागू किया जाएगा। इसी तरह सभी अस्पतालों के निदेशकों या सभी देशों में नियुक्त राजदूतों, या सभी राज्यपालों को एक इकाई माना जाएगा। जहां सीटों की संख्या सचमुच कम हो वहां ज्यादा पिछड़ापन होने को अवसर दिए जाने का आधार बनाया जाएगा। मिसाल के तौर पर, किसी जगह सिर्फ एक पद हो तो उसे दलित या आदिवासी से भरा जाए। अगर सिर्फ दो पद हों तो दूसरे पद को अन्य पिछड़ा वर्ग से भरा जाए और तीन पद हों तो तीसरे पद को सवर्ण से भरा जाए। हालांकि 1-2-3 के इस फॉर्मूले में दलित आदिवासी अन्य पिछड़ा वर्ग और सवर्ण को बराबर वजन दिया गया है जो समूहों के संख्यानुपात के हिसाब से सही नहीं है और सवर्णों को इससे लाभ होगा, फिर भी समाज में विविधता लाने के लिए खासकर पिछड़ों को यह कुर्बानी देना चाहिए।

इस आरक्षण व्यवस्था के अन्दर महिलाओं और शारीरिक रूप से असमर्थ लोगों को भी आरक्षण दिया जा सकता है। हर जाति समूह यानी दलित, आदिवासी, ओबीसी और सवर्ण के अन्दर एक खास अनुपात में (मिसाल के तौर पर 33 फीसदी) स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किया जा सकता है। वैसे ही हर समुदाय के कोटे में शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को भी आरक्षण दिया जा सकता है। इस तरह हर संस्थान में या क्षेत्र में हर जाति समूह के लोग होंगे, हर जाति समूह की महिलाएं होंगी और हर जाति समूह के शारीरिक रूप से असमर्थ लोग होंगे।

इस तरह भारत के संसाधनों और अवसरों पर देश के विभिन्न सामाजिक समूहों की सुसंगत भागीदारी बेहतर ढंग से सुनिश्चित हो पाएगी। यह सच है कि इस देश में अवसर कम है और संसाधन भी सीमित हैं लेकिन सीमित अवसरों और संसाधनों के असमान बंटबारे में बेहतर है कि बंटवारा समान हो। जब संसाधन और अवसर पर्याप्त हो जाएंगे तो इस तरह के बंटवारे की जरूरत नहीं पड़ेगी। लेकिन वह समय जब तक नहीं आ जाता, तब तक न्यायसंगत समाज बनाने के लिए डायवर्सिटी मिशन के इस प्रस्ताव पर सभी राजनीतिक दलों और सामाजिक चिन्तकों को विचार करना चाहिए। समाजवादियों, गांधीवादियों, वामपंथियों, महिला अधिकार की समर्थकों जैसी प्रगतिशील धाराओं की ओर से इस प्रस्ताव का व्यापक समर्थन मिल सकता है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार व प्राख्यात सामाजिक चिंतक हैं)

–जनसत्ता, 6 सितम्बर, 2010

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

बहुजनों में बहुजनों का विकास कैसे हो!

–सुधीन्द्र कुलकर्णी

सामाजिक बदलाव का जबरदस्त जनून

एच. एल. दुसाध आभिजात्य वर्ग के बुद्धिजीवियों में से नहीं है जिन्हें, हम दिल्ली के इण्डिया इंटरनेशनल सेण्टर जैसे उच्च सांस्कृतिक स्थलों पर आयाजित होने वाली संगोष्ठियों में शिरकत करते देखने के अभ्यस्त हैं। वह उन दूसरे करोड़ों भारतीयों में से एक हैं जो उस भाषाई भेदभाव के शिकार हैं जो जातिभेद के समान ही घृणित है। हमारी स्थापित बौद्धिक दुनिया में उन्हें ही प्रवेश मिलता है जो अंग्रेजी में लिखते-पढ़ते हैं, गैर-अंग्रेजी वालों के लिए गुंजाइश नहीं है। दुसाध और उनकी मित्रमण्डली के लोग इसमें पारंगत नहीं है। वे हिन्दी में ही लिखते हैं। किन्तु अत्यन्त सीमित साधनों और बिना किसी शोध सांस्थानिक सहायता के, उन्होंने दलित सशक्तिकरण के लिए जो लेखन कार्य किया है वह मात्रा में विशाल, गुणवत्ता में अतिमहत्वपूर्ण है जिसके पीछे सामाजिक बदलाव का एक जबरदस्त जुनून है एवं जो सामाजिक सरोकारों से गहरे जुड़ाव से ही किसी में पैदा होता है।

मैं दुसाध और उनके ग्रुप, जो बहुजन डाइवर्सिटी मिशन (बीडीएम) के नाम से जाना जाता है, से अवगत होकर खुद को सौभाग्यशाली मानता हूं। हम एक दूसरे से करीब एक साल से विचार विनिमय कर रहे हैं। हमारा संवाद अंततः मेरे लिए एक विशेष सन्तोष का विषय इसलिए है कि यह उस खाई को दूर करने में सेतु का काम करता है जो हमें एक दूसरे से जुदा करके रखती है। मुझे अपने हिन्दू होने पर गर्व है। उधर दुसाध और उनके साथी धर्म के मामले में विद्रोही हैं जिनमें पारंपरिक हिन्दुत्व के प्रति आक्रोश हैं। मैं बीजेपी के लिए काम करता हूं जबकि वह लोग इससे दूर हैं। लेकिन इतनी भिन्नता अगर हमें एक दूसरे के

निकट आने में बाधक नहीं बन सकी तो इसलिए कि डॉ. संजय पासवान, जो बिहार के एक पूर्व सांसद है एवं वाजपेयी सरकार में केन्द्रीय मंत्री भी रहे, हमारे लिए सेतु का काम किये। मैं डॉ. संजय पासवान का, दलितों के चहुमुंखी विकास के प्रति गहरा समर्पण देखते हुए उनका मुरीद रहा हूं। मैं उनके संपादन में निकलने वाली वंचित वाणी का एक आग्रही पाठक रहा हूं।

आजीवन शोध व लेखन करने का संकल्प

चश्मा व दाढ़ीधारी मृदुभाषी दुसाध जीवन में तमाम प्रतिकूलताओं से जूझते रहने के बावजूद कांशीराम के 'पे बैंक टू दी सोसाइटी' आह्वान की अनदेखी न कर सके और आजीवन शोध व लेखन कार्य करते रहने का सकल्प लिये। उनका दृढ़ विश्वास है कि कांशीराम केवल असाधारण संगठनकर्त्ता व दूरदर्शी राजनीतिज्ञ ही नहीं बल्कि एक मौलिक चिन्तक भी थे। कांशीराम का मुख्य लक्ष्य सिर्फ दलितों के लिए सामाजिक समता व आर्थिक शक्ति अर्जित करना था। बहरहाल उनका दृढ़ मत था कि यह लक्ष्य सिर्फ 'शुरुआती तौर पर राजनीतिक प्रभाव और अन्तिम तौर पर राजनीतिक सत्ता' के जरिये ही हासिल किया जा सकता है। उनके जीवन का अधिकांश समय ही शुरुआती लक्ष्य अर्थात राजनीतिक प्रभाव हासिल करने के लिए दलित जनसामान्य, बुद्धिजीवियों, कर्मचारियों इत्यादि को बीएसपी के पीछे लामबंद करने में कट गया। उनके जीवन के शेष दिनों में उनके द्वारा स्थापित बीएसपी ने आंशिक राजनैतिक प्रभाव भी हासिल किया। उनकी उपलब्धि इस मायने में और महत्वपूर्ण है कि पारंपरिक आंबेडकरवादी आन्दोलन जहां बुरी तरह विफल रहे वहां कांशीराम ने विधायी शक्ति के पीछे दलितों को संगठित करने का कारनामा अंजाम दे दिया।

कांशीराम की उत्तराधिकारी मायावती ने अब ब्राह्मण-दलित के अस्वाभाविक सामाजिक गठजोड़ के सहारे बीएसपी को खासा आगे बढ़ा दिया है। दुसाध और उनके साथियों के अनुसार दूरगामी रणनीति वही है।

आकर्षित करती है : डाइवर्सिटी की अवधारणा

मायावती की खास किस्म की सरकार, जो भ्रष्टाचार से घिरी है एवं जिसका तेजी से अपराधीकरण हुआ है, को लेकर दलित बुद्धिजीवियों में जो दुविधा का भाव है, उस पर में विस्तार से कुछ नहीं कहना चाहता। ऐसी स्थिति से राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध हर उस बुद्धिजीवी को दो चार होना पड़ता है जो किसी पार्टी विशेष का समर्थन करते हैं। बावजूद इसके मुझे, 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन' की अवधारणा आकर्षित कर रही है जिसका प्रचार-प्रसार दुसाध और उनके साथी कर रहे हैं। उनकी बुनियादी सोच है कि भारत की सामाजिक विविधता (सोशल डाइवर्सिटी) आर्थिक क्षेत्र में प्रतिबिम्बित नहीं हुई। मुट्ठी भर लोग, जो उच्च जातियों से है, धनवान व सुविधा सम्पन्न हैं, जबकि एससी-एसटी, ओबीसी से युक्त बहुसंख्यक (बहुजन) राष्ट्र की समृद्धि व विकास से बहिष्कृत हैं।

भारत की सामाजिक विविधता विकास में कैसे प्रतिबिम्बित हो? इसके लिए दुसाध का एक नारा है जिसे कांशीराम ने उछाला था, 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी भागीदारी।' मेरा मानना है यह सूत्र दोषपूर्ण व अव्यावहारिक है। न तो लोकतंत्र और न गतिशील अर्थव्यवस्था इस सूत्र पर चल सकती है। दूसरा दोष भारत स्वयं में एक सम्पूर्ण, संयुक्त व स्वतंत्र अस्तित्व वाला है, अलग-अलग संख्या वाले अपरिवर्तनीय सामाजिक समूह नहीं।

किन्तु बीडीएम के अध्यक्ष दुसाध और उसके साथी विविधता (डाइवर्सिटी) के जिस विचार प्रचार-प्रसार में जुटे हैं, वह गम्भीरता से विचार करने लायक है। इसकी पहली व बुनियादी विशेषता यह है कि अफरमेटिव एक्शन को नौकरियों में आरक्षण के सीमित दायरे से बाहर निकाल कर विचार करने की मांग उठाना है। उदाहरण के तौर पर डॉ. विजय कुमार त्रिशरण, जो झारखण्ड से बीडीएम के कार्यकर्ता हैं, लिखते हैं, 'दलित मुक्ति सिर्फ आरक्षण के जरिये असम्भव है।' वह हिसाब करके बताते हैं कि सरकारी क्षेत्र में 1.94 करोड़ नौकरियां हैं जिनमें एससी-एसटी के 45 लाख लोगों को रोजगार मिल सकता है, यदि ईमानदारी से सारा कोटा भरा जाए तो। इसके अतिरिक्त संगठित निजी क्षेत्र में 87 लाख नौकरियां हैं। यदि यहां कोटा लागू होता है और ईमानदारी से भरा जाता है तो 19.57 लाख और नौकरियां मिल सकती है। इस आरक्षण से अधिक से अधिक 64.57 लाख एससी/एसटी के लोगों को नौकरियां मिल सकती हैं। अगर कल्पना की जाये एक नौकरी से 5 व्यक्तियों से गठित एक परिवार का गुजारा हो सकता है तो आरक्षण से कुल 3.24 करोड़ एससी/एसटी के लोगों का गुजारा हो सकता है। अब एससी/एसटी के बाकी 21.75 करोड़ लोगों का गुजारा कैसे होगा? यह सीधा-सा सवाल है डॉ. त्रिशरण का।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

आरक्षण की सीमाबद्धता को आइना

मुझे यह स्वीकाार करने में कोई संकोच नहीं है कि पहली बार मेरा ऐसे दलित बुद्धिजीवियों से सामना हुआ जिन्होंने आरक्षण की सीमाबद्धता का आइना दिखाया। आरक्षण की युक्ति है और इसे बरकरार रहना भी चाहिए। लेकिन क्या यह हमारा नैतिक व संवैधानिक कर्त्तव्य नहीं कि हम नौकरियों के दायरे से बाहर निकलकर कुछ सोचें और करें ताकि विकास का लाभ बहुजनों में बहुजनों तक पहुंच सकें?

इस समस्या के समाधान में दुसाध और उनके साथी विविधता (डाइवर्सिटी) को बढ़ावा देने की हिमायत कर रहे हैं जो मेरे ख्याल से बाजिब भी है। इसका सम्पर्क एससी/एसटी उद्यमिता को बढ़ावा देने से है। इसके लिए सरकारी और निजी क्षेत्र के ठेकों, खरीदारी इत्यादि में दलितों को प्राथमिकता मिले। एसीसी/एसटी के हुनर पर निर्भर पारंपरिक कार्यों में आधुनिक विज्ञान और तकनीकी का इस्तेमाल हो तथा इनके द्वारा तैयार उत्पाद बिना बिचौलियों के सीधे बाजार में पहुंचे तो इनके आर्थिक सशक्तिकरण में मदद मिल सकती है। 'राजनीतिक दलों को विकास के नाम पर बीएसपी (बिजली, सड़क, पानी) से परे सोचना होगा, कहते हैं दुसाध। बहरहाल विकास में विविधता नहीं दिख रही है, मैं अंतत इस बात से सहमत हूं।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं जो पीएमओ में 1998 से 2004 तक वाजपेयी के सहायक रहे। यह लेख 22 फरवरी, 2009 को 'इंडियन एक्सप्रेस' में छपे उन्हीं के लेख–Bringing development to the Bahujan within Bahujan का अनुवाद है, जिसकी अनुवाद कविश कुमार ने किया है।)

एच. एल. दुसाध : डाइवर्सिटी मैन ऑफ इण्डिया

–अभिजीत कुमार

प्यारे दोस्तों,

रविवार 22 फरवरी 2009 को बीजेपी के बौद्धिक सिद्धान्तकार कुलकर्णी का दुसाध जी की भरपूर प्रशंसा से भरा लेख पढ़ा। यह आम दलितों की भांति साधारण पृष्ठभूमि से उभरे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति के विषय में सामाजिक विभाजन रेखा के उस पार खड़े व्यक्ति की दुर्लभ राय है। दुसाध जी आज जिस मुकाम पर खड़े हैं, वहां तक पहुंचने के लिए उन्होंने जिन प्रतिकूलताओं का सामना किया, उसके विषय में दो शब्द बताना चाहूंगा।

मुझे एक बार उनकी एक किताब, जिसका शीर्षक था 'डाइवर्सिटी : दलित सशक्तिकरण का सर्वोत्तम औजार,' पढ़ने का अवसर मिला और मैं उन जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के विषय में, जो स्नातक भी नहीं था, लगातार सोचने के लिए विवश हो गया। जल्दी ही मैंने किताब पढ़ ली और ऐसी अर्थपूर्ण किताब लिखने के लिए उन्हें फोन पर बधाई दी। दुसाधजी ने बड़ी विनम्रता से मेरी बधाई स्वीकार की। फोन पर लम्बे वार्तालाप के दौरान इतनी महत्वपूर्ण किताब लिखने का कोई अहंकार बोध उनकी बातों में नहीं पाया। वह सन् 2005 के मध्य की बात थी। उसके कुछ माह बाद उन्होंने 27 अगस्त 2006 को दिल्ली के इण्डिया इंटरनेशनल सेन्टर में आयोजित होने वाले 'डाइवर्सिटी डे' कार्यक्रम में शिरकत करने के लिए मुझे आमंत्रित किया। उस समारोह में श्री दिग्विजय सिंह (मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री), डॉ. संजय पासवान (पूर्व केन्द्रीय मंत्री), चन्द्रभान प्रसाद (सुप्रसिद्ध स्तम्भकार), डॉ. ए. के. चौहान (एमिटी यूनिवर्सिटी के संस्थापक), अरिन्दम चौधरी (प्रो. आई. आई पी एम), अभय कुमार दुबे, प्रो. वीर भारत तलवार, डॉ. राम समुझ जैसे गणमान्य

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

लोगों के बीच मीडिया के ढेरों लोगों ने भाग लिया था।

दुसाध : दलितों का मुक्ति योद्धा

मेरी जब बोलने की बारी आई मैंने अपने संबोधन में **दुसाधजी को दलितों का मुक्ति योद्धा (क्रुंसेडर) और 'डाइवर्सिटी मैंन ऑफ इण्डिया' करार दिया था।** कुलकर्णी के लेख ने मुझे उस दिन की स्मृति ताजा कर दी। यद्यपि दुसाध जी को आज किसी प्रमाणपत्र की जरूरत नहीं है, किन्तु किसी को उनकी प्रशंसा करने से रोका भी नहीं जा सकता।

आपको हैरानी हो रही होगी कि मैं दुसाध जी का जीवन वृतान्त क्यों सुनाने लगा। ऐसा इसलिए मेरे प्यारे भाइयों और बहनों कि एक समाज को उसी तरह सम्मान मिलता है जिस तरह वह अपने बुद्धिजीवियों को सम्मान देता है। दुसाध दूसरे दलितों की भांति ही बहुत सामान्य पृष्ठभूमि से हैं, किन्तु उन्होंने कठोर मेहनत और व्यक्तिगत त्याग के बलबूते एक दलित सिद्धान्तकार के रूप में अपनी पहचान बनाई है। मैंने दिल्ली जाकर देखा है, वह कैसी जिन्दगी जीते हैं। वह अपने कुछ मित्रों के सहयोग पर, जिनकी माली हालत खुद भी अच्छी नहीं है, निर्भर रहकर गुजर बसर कर रहे हैं। किन्तु इतनी कठिनाइयों के बीच भी **दुसाधजी बड़े जुनून के साथ डाइवर्सिटी मिशन चला रहे हैं। दरअसल डाइवर्सिटी मिशन उनके लिए व्यसन बन चुका हैं। वह दलित सम्मेलनों, संगोष्ठियों, रैलियों में किताबें, जिनमें अधिकांश उनकी ही लिखी किताबें होती हैं, बेचकर डाइवर्सिटी मिशन चला रहे हैं।**

पिछले दिनों दिसम्बर 2008 में कटक में आयोजित बामसेफ के सम्मेलन में एक अप्रिय घटना हो गयी। वहां दुसाध जी ने अपनी किताबें बेचने के लिए स्टाल लगाया था। इसके लिए उन्होंने आयोजकों को अग्रिम भुगतान भी कर दिया था। कार्यक्रम के चौथे दिन बामसेफ के अध्यक्ष ने दुसाध जी को परिसर खाली करने का आदेश जारी कर दिया। उन्हें अपमानित कर वह जगह छोड़ने के लिए मजबूर किया गया। ऐसा इसलिए कि बामसेफ के उस धड़े के अध्यक्ष को दुसाध जी के विचार से एलर्जी थी।

मिशन चलाने का जरिया : किताबों की बिक्री

ऐसा हो सकता है कि कोई दुसाध जी के विचारों से असहमत हो पर, इससे किसी को यह अधिकार नहीं मिल जाता कि उन्हें सरेआम बेइज्जत कर जगह छोड़ने के लिए विवश कर दे। उस घटना के बाद उन्होंने फोन करके भारी मन से सारी बातें बताई। मैंने महसूस किया कि हमारे एक बौद्धिक नायक को बेइज्जत कर हम सबकी बेइज्जती की गई है। उन्होंने बताया था कि अब आगे से ऐसी जगहों पर किताबें नहीं बेचेंगे। किताबों की बिक्री मिशन चलाने का जरिया थी। अब जबकि आय का वह स्रोत सुख गया है, उनका मिशन भी बन्द होने की ओर अग्रसर है। उन्होंने अपनी असमर्थता से अवगत कराते हुए हाल ही में मुझे एक पत्र लिखा था। यह हमारे पूरे समाज के लिए भारी चिन्ता का विषय होना चाहिए कि हमारा एक असाधरण प्रतिभा सम्पन्न आदमी अपनों के रहते हुए भी अपने घुटनों के बल झुक रहा है। यह सकारात्मक रूप से सोचने का विषय है कि हम आगे भी दुसाध जी के मूल्यवान विचारों से कैसे लाभान्वित होते रहें। हमें उनकी मदद के लिए आगे आना चाहिए। उनका मिशन करोड़ों के समान है।

(लेखक पूर्व आईआरएस हैं।)

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

एच.एल. दुसाध : समकालीन भारत के कार्ल मार्क्स

–डॉ. राज बहादुर मौर्य

21 वीं सदी में प्रवेश करते भारत में बहुजन आन्दोलन के मुख्यधारा के प्रतिनिधि एच. एल. दुसाध की पहचान आज डाइवर्सिटी मैन ऑफ इण्डिया के रूप में है। 20 अक्टूबर, 1953 को ग्राम नरौली खेम, पोस्ट सुखुन्दु, जनपद देविरया, उत्तर प्रदेश (भारत) में एक निर्धन दलित परिवार में पैदा हुए एच. एल. दुसाध, मां श्रीमती जगदेई व पिता बृजमोहन प्रसाद की इकलौती सन्तान हैं। गांव की गरीबी ने बचपन में ही परिवार को पलायन करने पर मजबूर किया। परिणामस्वरूप दुसाध जी ने अपनी उम्र के शुरुआती 33 साल कोलकाता (पश्चिमी बंगाल) में बिताए। यहीं हायर सैकेण्डरी तक की शिक्षा प्राप्त की। घर की जिम्मेदारियेां का बोझ अधिक बढ़ा तो पढ़ाई छोड़कर 1975 में क्लोराइड इण्डिया लिमिटैड नामक फैक्ट्री में नौकरी कर ली। नौकरी के पूर्व ही श्रीमती मेवाती देवी के साथ विवाह भी सम्पन्न हुआ था। समय बीतने के साथ ही प्रशान्त, प्रवीण, कविश तथा अविनाश (चार पुत्र) व एक बेटी सुशीला ने जन्म लेकर माता पिता पर और जिम्मेदायिां बढ़ा दी। इसी बीच वर्ष 1995 में अलमस्त और फक्कड़, परन्तु चिन्तनशील दुसाध ने शानदार नौकरी भी छोड़ दिया। जीवन के इस मुश्किल भरे दौर में उन्होंने नाटक, टी. वी. फिल्म और एकांकी में भी किस्मत आजमायी। परन्तु कहीं भी अपेक्षित सफलता नहीं मिली। दो वर्षों के लिए रोजी-रोटी की तलाश में दुसाध जी अरुणाचल प्रदेश भी गये। परन्तु उन्हें वहां भी अपनी मंजिल नहीं मिली। अन्ततः वर्ष 1998 में दुसाध जी ने नई दिल्ली को अपना आशियाना बनाया।

मूलतः चिन्तन और लेखन के लिए पैदा हुए एच.एल. दुसाध ने 1997 से अपने आप को बतौर लेखक पूर्णकालिक रूप से बहुजन आन्दोलन में समर्पित कर दिया। तब से लेकर अब तक विगत एक दशक में बहुजन आन्दोलन को समर्पित आपकी तीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से 23 पुस्तकें केवल बहुजन भागीदारी सिद्धान्त के आर्थिक मुद्दे पर केन्द्रित हैं। **भारत में संख्या अनुपात में आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी की सशक्त पैरवी करने वाला आन्दोलन 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन' एच. एल. दुसाध की अपनी मौलिक देन है। यद्यपि दुसाध जी के प्रेरणा स्रोत बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर तथा मान्यवर काशीराम हैं, परन्तु चिन्तन और लेखन के क्षेत्र में उनकी अपनी एक अलग प्रतिभा, दृष्टि और पहचान है। जहां उनके चिन्तन व वैचारिक हमसफर रामस्वरूप वर्मा तथा जगदेव प्रसाद जैसे क्रान्तिकारी साथी हैं, वहीं दुसाध जी उनसे बहुत आगे बढ़कर हैं। भारतीय समाज में हिन्दू धर्म के अन्तर्गत पायी जाने वाली वर्ण व्यवस्था से उपजी असमानता, उनके चिन्तन का मूल आधार है।**

डाइवर्सिटी मिशन-व्यवस्था उत्पत्ति

यद्यपि भारत में दलित आन्दोलन का एक लम्बा और संघर्ष पूर्ण अतीत है। परन्तु जहां अतीत में इस आन्दोलन से सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक पक्षों पर उल्लेखनीय कार्य तथा सुधार हुआ है, वहीं आर्थिक क्षेत्र में निश्चय ही अपेक्षित कार्य नहीं हो पाया। **दुसाध जी ने इसी आर्थिक क्षेत्र को अपने चिन्तन तथा लेखन का मुख्य केन्द्र बिन्दु बनाया। 15 मार्च, 2007 को देश में सदियों से व्याप्त आर्थिक गैरबराबरी के खात्में की लक्ष्य प्राप्ति के 'ऐक्सन प्लान' के तहत 'बहुजन डाइवर्सिटी मिशन' नामक संगठन की स्थापना की।**

मौलिक रूप से जो तथ्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि आदर्शों को एक ओर रखकर एच.एल. दुसाध भारतीय समाज व्यवस्था की ऐतिहासिक प्रक्रिया तथा संरचना पर अपने को केन्द्रित करते हैं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की समकालीन परिघटना भूमण्डलीयकरण, निजीकरण और उदारीकरण के तर्क और प्रकृति सिद्धान्त निर्माण भी उनका अभ्यास है। दोनों को मिलाने पर ही उनके द्वारा दी गयी भारतीय समाज के भावी पथ की भविष्यवाणियां समझी जा सकती हैं।

एच.एल. दुसाध की ऐतिहासिक डायवर्सिटी मिशन की अवधारणाएं अविच्छन्न रूप से सामाजिक परिवर्तन के लिए आजीवन संघर्ष करने वाले महामानवों से जुड़ी हैं। तथागत बुद्ध का बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय-लोकानुकम्पाय का चिरपरिचित सन्देश, रामस्वरूप वर्मा का अर्जक मिशन, बोधिसत्त्व बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर का आर्थिक चिन्तन एवं दर्शन तथा आधुनिक भारत के मसीहा मान्यवर

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

कांशीराम का ''जिसकी जितनी संख्या भारी – उसकी उतनी हिस्सेदारी'' का सामाजिक परिवर्तन का नारा ही दुसाध के चिन्तन का मूल स्रोत हैं। हां वह अपनी व्यावहारिक वैचारिक प्रेरणाएं विश्व के कई देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका में पायी जानी वाली भागीदारी दर्शन से भी प्राप्त करते हैं। किन्तु विचार की व्याख्या में उनकी अपनी मौलिकता है जो भारतीय समाज की हिन्दू वर्ण-व्यवस्था में बदलाव को समर्पित है।

यह सही है कि दुसाध जी को डॉ. अम्बेडकर व मान्यवर कांशीराम के दर्शन एवं चिन्तन ने सम्मोहित किया। उनमें मानव विकास व मानवीयता की बुद्धिस्ट अवधारणा से मिलती जुलती एक समानता है। उपरोक्त चिन्तकों ने दुसाध को नैतिक और राजनैतिक निर्देशन भी दिया। परन्तु तथागत के दर्शन को जिस प्रकार बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने आधुनिक भारत में नवीनता और आवश्यकतानुकूल समायोजित कर प्रस्थापित किया। मान्यवर काशीराम ने बाबा साहिब डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन एवं दर्शन को बदलते परिवेश में समाहित कर आगे बढ़ाया। उसे नया आयाम, नया रूप तथा नई दिशा प्रदान कर ऊंचाइयों तक पहुंचाया। **उसी प्रकार एच. एल. दुसाध जी ने मान्यवर के भागीदारी दर्शन को डायवर्सिटी मिशन में परिवर्तित कर पूरे भारतीय समाज को एक नया विजन, नई दृष्टि तथा नई सोच दिया है। दुसाध जी का साफ कहना है कि मानव जाति की सबसे बड़ी समस्या आर्थिक गैर-बराबरी है और यह आर्थिक गैर बराबरी प्रकृतिजन्य नहीं वरन् मानव निर्मित है।** इस आर्थिक गैर बराबरी ने भारतीय समाज को उस अद्योगति में पहुंचा दिया है जहां देश की 85 प्रतिशत आबादी शेष 15 प्रतिशत आबादी के रहमो-करम पर जीने को मजदूर है। मानव और मानवीयता के वह सारे आदर्श जिससे कल्पना जगत के संसार का खांका खींचा जाता है तथा समभाव और समभाव का नारा दिया जाता है, इस वंचित समुदाय के लिए घिनौना मजाक है। दुसाध जी इससे भी दो कदम आगे बढ़कर **आदर्शवादी विद्वानों के कथन की धज्जियां उड़ाते हुए सफल कहते हैं कि 'भारत की विविधता में एकता नहीं शत्रुता।' एक ऐसी शत्रुता जिसकी अब तक जानबूझकर इसलिए अवहेलना की गयी है क्योंकि इसका पर्दाफाश होने पर** चिर सुविधाभोगी वर्ग की सुविधा खतरे में पड़ जायेगी। दुसाध जी का यह भी मानना है कि यदि यह मान भी लिया जाए कि भारत में विविधता है तो भी वास्तव में कभी भी भारत की विविधता को ईमानदारी से पहचानने और सम्मान देने की कोशिश नहीं की गयी। यदि ईमानदारी से भारतीय समाज में पायी जाने वाली विविधता को पहचान कर उसके संख्या अनुपात में अर्थव्यवस्था में भागीदारी दे दी जाती तो, आज भारत अतुल्य भारत के अरबपतियों तथा बहुजन भारत के वंचितों में बंटा न होता, जातीय और धार्मिक आधार पर दंगे न होते, आर्थिक विषमता की इतनी चौड़ी दरार न होती, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का देश की अर्थव्यवस्था में इतना बोलबाला न होता, स्वदेशी का इतना लम्बा चौड़ा नारा देने की जरूरत न पड़ती; भारत के मूलनिवासी आज भी जंगलों, पठारों और पहाड़ों में न होते; भूमण्डलीकरण का सैलाब उनकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व शैक्षिक गतिविधियों को तहस-नहस न कर पाता। भारत की अकूत प्राकृतिक सम्पदा पर विदेशी कम्पनियों हावी न हो पातीं। तब सच्चे अर्थों में भारत की विविधता देश की अटूट और अखण्ड एकता बनती। कहीं किसी भी कोने से देश में अलगाव की समस्या पैदा न होती। भारतीय लोकतंत्र में आम जनता का विश्वास और दृढ़ होता। लोकतंत्र भी विश्वास की नींव 30-40 प्रतिशत मतों तक सीमित न होती। वरन् बहुजन भारत की लोकतंत्र के रंगमंच का नायक होता और संसद सच्चे अर्थों में सम्पूर्ण भारत की संसद होती। यही नहीं यदि विविधता को भागीदारी दी जाती तो महिला सशक्तीकरण का प्रश्न अपने आप पूर्ण होता नजर आता। वह देह व्यापार नहीं, देश के कारोबार की संचालिका होती। प्रतिदिन अखबारों की सुर्खियां बनते दलित अत्याचार और महिला उत्पीड़न की समस्या से समाज और राष्ट्र को निजात मिलती। **वस्तुतः दुसाध कृत डायवर्सिटी मिशन दुनिया का ऐसा सिद्धान्त व कार्य एजेण्डा है जिसका मानना है कि मानव मस्तिष्क और चिन्तन के पूर्ण विकास के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता पहली शर्त है। प्राथमिक तथ्य यह है कि मनुष्य सोचेगा तो तब न, जब वह जीवित रहेगा और यही मानव अनुभव का गतिशील सिद्धान्त है। जीविका कमाने की किसी भी पद्धति में कोई भी परिवर्तन मनुष्य की सम्पूर्ण बौद्धिकता और आध्यात्मिकता को झकझोर कर रख देता है।**

भारतीय समाज में पायी जाने वाली वर्ण व्यवस्था, जिसे दुसाध जी वितरण व्यवस्था कहकर सम्बोधित करते हैं, ने अपने लम्बे समयान्तराल में एक ऐसी विचार व्यवस्था को जन्म दिया जहां इन्सान के आपसी सम्बन्ध जातीय कर्म से जुड़ते चले गये। जीविका उपार्जन और जीवन निर्वहन के लिए जिन सामान्य हितों की आवश्यकता थी वे विभक्त व्यक्ति के हितों से टकराने लगे। जो चतुर, शैतान और शक्तिशाली किस्म के लोग थे, वह देश के संसाधनों पर काबिज हो गये और दूसरों को अधीन स्थिति में धकेल दिया। आज की मानवता, जिसके जातीय हित उसे पूरी तरह अकेला कर चुके हैं, किसी तरह कुछ समन्वयी व्यवस्थाओं के सहारे हल्की सी बंधी हुई है।

बहुजन डायवर्सिटी मिशन का विश्लेषण वैसे तो मनुष्य के हर पहलू पर लागू किया जा सकता है तथा मिशन द्वारा प्रदत्त विजन से समस्याओं को विश्लेषित

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

व विवेचित किया जा सकता है तथा उनका प्रभावी समाधन भी किया जा सकता है। मिशन के संस्थापक एच. एल. दुसाध ने इसे 10 सूत्रीय एजेण्डे के रूप में प्रस्तुत किया है जिसमें निम्नलिखित क्षेत्रों में (चार सामाजिक समूहों सवर्ण, ओबीसी, एससी/एसटी और धार्मिक अल्पसंख्यकों के) संख्यानुपात में अवसरों के बंटवारे की मांग की गयी है।

1. **सेना व न्यायालयों सहित सरकारी और निजी क्षेत्र की सभी प्रकार की नौकरियों और पौरोहितय में,**
2. **सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा की जाने वाली सभी वस्तुओं की खरीदारी में,**
3. **सरकारी व निजी क्षेत्रों द्वारा दी जाने वाली सभी वस्तुओं की डीलरशिप,**
4. **सड़क भवन निर्माण इत्यादि के ठेकों, पार्किंग, परिवहन में,**
5. **सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा चलाये जाने वाले छोटे बड़े सभी स्कूलों, विश्वविद्यालयों, तकनीकी-व्यवसायिक शिक्षण संस्थाओं में संचालन, प्रवेश व अध्यापन,**
6. **सरकारी और निजी क्षेत्रों द्वारा अपनी नीतियों, उत्पादित वस्तुओं इत्यादि के विज्ञापन के मद में खर्च की जाने वाली धनराशि,**
7. **देश-विदेश की संस्थाओं द्वारा गैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) की दी जाने वाली धनराशि,**
8. **प्रिन्ट व इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं फिल्म टी.वी. के सभी प्रभागों,**
9. **रेल राष्ट्रीय राजमार्गों की खाली पड़ी भूमि सहित तमाम सरकारी व मठों की जमीन व्यावसायिक इस्तेमाल के लिए भूमिहीन अस्पृश्य/आदिवासियों के मध्य वितरित हो एवं,**
10. **राज्य एवं केन्द्र की कैबिनेट, विभिन्न मंत्रालयों के कार्यालयों, विधान परिषद, राष्ट्रपति, राज्यपाल एवं प्रधानमंत्री व मुख्यमन्त्रियों आदि के कार्यालयों इत्यादि में।**

यद्यपि दुसाध जी का चिन्तन विश्व के महान विद्वान मार्क्स से परिचित है। इसका एक प्रमुख कारण उनका लगातार 33 वर्षों तक पश्चिम बंगाल में प्रवास भी है। जहां निश्चित तौर से वह मार्क्सवादी विचारधारा के सम्पर्क में आये। परन्तु शान्तिवादी, तथागत बुद्ध के अनुयायी दुसाध जी कभी भी मार्क्स की विचारधारा को आत्मसात नहीं कर सके। मार्क्स का वर्ग संघर्ष का विश्लेषण तथा हिंसक क्रान्ति के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन उन्हें कभी भी भारतीय परिवेश में, वह भी समकालीन दौर में उचित नहीं लगा। सबसे बड़ी बात तो यह है कि दुसाध जी के अनुसार मार्क्स ने जिस आर्थिक गैर-बराबरी के खात्मे का वैज्ञानिक सूत्र दिया है उसकी उत्पत्ति साइन्स और टेक्नालॉजी के विकास के कारण होती है। जबकि भारत में आर्थिक गैर-बराबरी जन्मगत कारणों से है। जब उन्होंने बोधिसत्व बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर के समग्र साहित्य का अध्ययन किया तो मानो एकाएक उन्हें बौद्धिक नवजागरण मिला। भारत की बहुजन आबादी के जीवन को कैसे अन्धकार से उबार कर प्रकाश के मार्ग पर लाया जाए, इसकी दूरदृष्टि उन्हें डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन में मिल गयी।

दुसाध जी ने यह देखा कि बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर भारत की दलित जातियों की आर्थिक विमुक्ति के लिए कितना संघर्षरत थे। इस बारे में 29 अक्टूबर, 1942 को डॉ. अम्बेडकर ने ब्रितानी सरकार के समक्ष मांग को रखते हुए पी. डब्ल्यू. डी. के ठेकों में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण की मांग की थी। बाबा साहेब के परिनिर्वाण के बाद भारत के महान सपूत कांशीराम ने इसे 'जिसकी जितनी संख्या भारी उसकी उतनी भागीदारी' का नारा देकर आगे बढ़ाया। यहां यह कहना भी प्रासंगिक है कि मान्यवर साहेब के जीवन के आखिरी दौर तथा उनके परिनिर्वाण के पश्चात उनकी राजनीतिक विरासत को बसपा ने संभालकर आन्दोलन को आगे बढ़ाया। परन्तु दलित आन्दोलन का आर्थिक पहलू कमजोर पड़ गया।

'पे बैंक टू द सोसायटी' के मूल नारे के साथ चलने वाला 'बामसेफ' को आर्थिक क्षेत्र में केवल ब्राह्मणवाद को कोसने के अतिरिक्त कोई सकारात्मक कार्यक्रम के आन्दोलन की रूपरेखा देश व बहुजनों के समक्ष नहीं रख पाया। **दलित आन्दोलन के अन्य अनेक महारथी भी भारत में ब्राह्मणवाद के अर्थशास्त्र को नहीं समझ पाये, जिसका परिणाम यह हुआ कि पिछले 50 वर्षों में दलित आर्थिक विमुक्ति का कोई एजेण्डा ही सामने नहीं आ पाया। दुसाध जी ने अपने लेखन में ब्राह्मणवाद के अर्थशास्त्र को विश्लेषित किया तथा हिन्दू आरक्षण और बहुजन संघर्ष, वर्ण व्यवस्था एक वितरण व्यवस्था जैसी पुस्तकें लिखकर दलित बुद्धिजीवियों के समक्ष एक सशक्त तथा सार्थक बहस खड़ी किया।** ब्राह्मणवाद क्या है? आप इसे कैसे समझते हैं? ब्राह्मणवाद का अक्षय ऊर्जास्रोत कहां है? ब्राह्मणवाद के औजार कौन-कौन से है? भूमण्डलीकरण के दौर में ब्राह्मणवाद को कैसे परास्त किया जा सकता है? किस एजेण्डे से ब्राह्मणवाद के अर्थशास्त्र तथा उसकी अक्षय ऊर्जा को समूल नष्ट किया जा सकता है? जैसे प्रश्नों की बुद्धिजीवियों के समक्ष रखा। पूरे देश के महानगरों से लेकर गांव के बुद्धिजीवियों से इस पर उनकी बेबाक राय मांगी तथा बिना किसी लाग लपेट के उन सारी रायों को अपने लेखन में स्थान दिया। वर्ष 2006 से लगातार

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

ऐसी राय तथा बुद्धिजीवियों, पत्रकारों व आम जनता के विचारों को समाहित करते हुए डाइवर्सिटी इयर बुक का सम्पादन किया/कर रहे हैं। यहां पाठकों का ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहूंगा कि हर साल 27 अगस्त को प्रकाशित होने वाली डायवर्सिटी इयर बुक लगभग 1500 पृष्ठों की होती जिसमें आर्थिक मुद्दों से जुड़ी सामग्री ही प्रकाशित की जाती है। मुझे नहीं लगता आर्थिक मुद्दों पर इतनी विशाल वार्षिकी निकालने का दुःसाहस आज तक और किसी ने किया है।

वास्तव में सारा मानव जाति इतिहास इस बात की गाथा है कि शक्ति, प्रतिष्ठा और आध्यात्मिक नियंत्रण में स्थापित एक वर्ग दूसरे वर्ग से यह सब कैसे छीनता है। मार्क्स ने अपनी आधार और अधिरचना (बेस एण्ड सुपर स्ट्रेक्चर) के सिद्धान्त में इसका सटीक विवेचन किया है। परन्तु यहां यह बात ध्यान में रखने की है कि मार्क्स ने दुनिया को अपना चिन्तन उस समय दिया था जब यूरोप में सामन्तवाद के पतन के लक्षण दिखायी दे रहे थे तथा औद्योगिकरण का दौर प्रारम्भ हो रहा था। कुछ-कुछ औद्योगीकरण के दोष उभरकर समाज के सामने आ रहे थे। परन्तु दुसाध जी अपना चिन्तन 21 वीं शताब्दी के प्रवेश द्वार पर खड़े विश्व के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं जबकि औद्योगिकरण तथा प्रौद्योगीकरण के संजाल ने पूरी दुनिया को अपनी गिरफ्त में ले लिया है।

इस तथ्य और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि हिंसक क्रान्ति के दौरान या बाद में मार्क्स यह नहीं कहता कि औद्योगिकरण या उसके आधारभूत ढांचे को ही नष्ट कर दिया जाए वरन् वह तो उस प्रोलितेरियत के कब्जे की बात करता है जो कारखाने के मजदूर हैं। दुसाध जी उससे दो कदम आगे बढ़कर सिर्फ संख्यानुपात में भागीदारी की बात करते हैं वह भी प्रथमतः सार्वजनिक विभागों से। इस भागीदारी सिद्धान्त में न तो हिंसक क्रान्ति के बीज हैं न लोकतांत्रिक व्यवस्था का खतरा है, न साधनों का अपव्यय। यह तो एक ऐसा महान एवं दूरदर्शी सिद्धान्त है जो मानवता के सम्बल पर आधारित है। जहां किसी के लिए बदले की भावना नहीं, जीओ और जीने दो की मानवीय सोच है; बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय जिसका आदर्श है। वस्तुतः दुसाध जी के जीवन के आदर्श तथागत बुद्ध से लेकर सन्त कबीर, सन्त रविदास, बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, मान्यवर काशीराम व अमेरिकी अब्राहम लिंकन और हैरियट स्टो हैं जिन्होंने प्रेम, दया, ममता, करुणा का सन्देश देकर लोगों के दिलों में ममता का झरना प्रवाहित किया है।

यद्यपि धार्मिक चिन्तन दुसाध जी के विश्लेषण का गहन विषय नहीं है। वह धार्मिक मुद्दों को वहीं स्पर्श करते हैं जहां वह अपने दायरे का विस्तार कर रोजी-रोटी में दखलन्दाजी करता है। परन्तु हिन्दू धर्म पर उनका प्रहार तीखा है, क्योंकि हिन्दू धर्म एक ऐसी साजिश है जिसका प्रयोग एक वर्ग दूसरे वर्ग पर ऐसे हथियार के रूप में करता है जिससे उनकी शक्ति बनी रहे। ऐतिहासिक सन्दर्भ में धार्मिक मान्यताएं केवल युग धर्म के युग विशेष की नैतिकता का पिष्टपोषण करती है। यह युग धर्म एक प्रकार की वर्ग नैतिकता है जिसे मानव धर्म या मानवांचित नैतिकता नहीं कहा जा सकता। ये नैतिकतावादी चाहे कुछ भी सोचते रहें तथा इनके सिद्धान्तों में चाहे कितनी भी सार्वदेशिकता हो, व्यवहार में यह सब खोखली नारे बाजी है। वस्तुतः नैतिक सिद्धान्तों व आदर्शों के बीच जो खाई दिखलायी देती है उसे धर्म नाना प्रकार के उपायों से तर्क सम्मत बनाता रहता है। कहने को तो लोग सार्वजनिक परमसत्ता और जनहित की बातें करते हैं किन्तु उनका यह ईश्वर कुछ लोगों के हितों का रक्षक मात्र है। दुसाध जी धर्म और आस्थाओं के अन्तर्विराधों के तथ्य को ठुकराते हैं। उनके अनुसार जो लोग मनुष्य के कोरे बन्धुत्व तथा ईश्वर के परम पिता होने का ढोंग करते हैं वे सब ऐसे समाजों में रहते हैं जहां यह सब असम्भव है। क्योंकि जातीय और वर्ग विभाजन इस विचार को पहले ही विकृत कर चुका है। दुसाध के चिंतन का सार यह है कि हिन्दू धर्म वर्ग दुर्भावना का कैदी है। अतः वास्तविक दुनिया के लिए उसके नैतिक उपदेशों का कोई औचित्य नहीं है। परिणामस्वरूप वह आत्मा या अध्यात्म का सहारा लेता है और अपने अवलम्बियों को यह कहकर बहकाता रहता है कि परलोक इससे भिन्न होगा और वहां सब ठीक हो जाएगा।

डाइवर्सिटी का सम्मोहन

दुसाध कृत डाइवर्सिटी मिशन की व्यापकता के दो प्रमुख कारण है। **प्रथम तो यह कि व्यवस्था के रूप में यह एक लम्बी छलांग लगाता है। दूसरा यह कि इसने राजनीतिक व्यवस्था मे आर्थिक विचारों की रिक्तता के आकाश को भरने का प्रयास किया है। यह चिन्तन व्यवस्था उन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों से लोहा ले रही है जो मानव जाति के सामने मुंह वाये खड़े हैं। आज जबकि आदर्शवादी, समाजवादी, साम्यवादी अर्थव्यवस्थाओं के आधार टूट रहे हैं और नये समाज को चिन्तन का कोई आधार ही नहीं मिल रहा है। मनुष्य अपनी उस स्थिति से बेदखल होता जा रहा है जो उसकी पारम्परिक विरासत थी। अचानक वह हाइटेक औद्योगिक परिवेश में जबरदस्ती बांध दिया गया है जिसके ज्ञान और प्रभाव से वह अनभिज्ञ है। प्राचीनता की जड़ें हिल चुकी हैं किन्तु जुड़ाव की योजनाएं ढूंढ़ने से भी नहीं मिल रही हैं।**

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

इस खाई को पाटने के लिए ही एच. एल. दुसाध कृत डाइवर्सिटी मिशन आगे आया है। पटना में प्रकाशित अम्बेडकर मिशन पत्रिका के सम्पादक बुद्धशरण हंस ठीक ही कहते हैं कि एक सम्बद्ध और शक्तिशाली भारत के लिए डायवर्सिटी ही एक रास्ता है जो देश की शत प्रतिशत आबादी के प्रश्नों से जुझ रहा है। यद्यपि अनेक छोटे-मोटे और खण्डित सवाल भी 21वीं शताब्दी के राजनीतिक अन्वेषण ने इसकी झोली में डाल दिये हैं। इस तरह बहुजन डाइवर्सिटी मिशन एक ऐसी विशद दृष्टि विकसित कर रहा है तथा उन मुद्दों पर अपने को केन्द्रित कर रहा है जो अब तक पूरी तरह अछूते थे।

अतुल्य तथा बहुजन भारत में विभक्त आर्थिक असमानता की चर्चा करने वाले दुसाध उस अनुभव पर अपनी उंगली रख रहे हैं जो बहुतों की पीड़ा दे रहा है। वह ऐसी अवधारणाओं एवं परिभाषाओं को नकारते हैं जिसका कोई आधार और अस्तित्व न हो। भागीदारी सिद्धान्त में समाज की आधारशिला ढूंढ़ते हुए वह यह बतलाने का प्रयास कर रहे हैं कि भारत में ब्राह्मणवाद की आधार तथा अधिरचना को संख्यानुपात में प्रत्येक स्तर पर भागीदारी देकर समाप्त किया जा सकता है। माना यह दूर का सपना लगता है परन्तु यह साध्य है। इस तरह दुसाध समाज की पुनर्स्थापना को एक नया अर्थ दे रहे हैं और यह अर्थ केवल इतिहास के उद्देश्य का निरा सपना नहीं है, बल्कि यह साधनों की एक ऐसी अवधारणा है जो न केवल दलित वर्ग को वरन् वर्ण व्यवस्था के बंचितों को जोड़कर उनकी एकता को सुदृढ़ कर उन्हें बाहरी दुनिया से भी जोड़ रही है। दुसाध जी जहां अमेरिकी लेखक हैरियट स्टो से प्रेरणा ग्रहण करते हैं वहीं वह ओबामा और अफ्रीका नेता जैकब जुमा को भी अपनी चिन्तन दायरे में लाते हैं। यद्यपि दुनिया में भागीदारी सिद्धान्त नया नहीं है परन्तु दुसाध जी ने भारतीय परिवेश में उसे नया अर्थ, नया विजन व नई दृष्टि प्रदान किया है।

इस तरह बहुजन डाइवर्सिटी मिशन उस सम्मोहन का परिचायक है जो भारत ही नहीं वरन विश्व में जन्माधारित कारणों से अविकसित मानवता के लिए अपनी अपील रखता है। इन विकासशील देशों के लोगों को भूमण्डलीकरण व निजीकरण ने संत्रास की स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया है। औद्योगिक टेक्नोलॉजी कुछ व्यक्तियों व समाजों को समृद्धि के द्वार तक ले आयी है जबकि शेष व्यक्ति 20 रुपये प्रतिदिन से कम पर जीवन गुजर-बसर करने को मजबूर हैं। भागीदारी सिद्धान्त ऐसे वंचितों को जुड़ाव का आधार प्रदान करता है। भारत के वंचित यह समझने लगे हैं कि देश में एक वर्ग विशेष ने उनके सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन का लाभ उठाया है। दुसाध जी के कितने ही प्रकाशित लेख व पुस्तकें उनकी इस करुण कथा को सुनाते हैं।

अतः यह मानना होगा कि भागीदारी सिद्धान्त केवल आर्थिक निर्धनता या गरीबी की ही देन नहीं है। यह तो एक ऐसा सामाजिक सन्देश है जिसका औचित्य निर्विवाद है। एक विचारधारा के रूप में वह यह कह रहे हैं कि देश में व्याप्त आर्थिक असमानता और अफ्रीका के ब्लैक्स आज विश्व बिरादरी में अपना सम्मानपूर्ण स्थान बना चुके हैं। वस्तुतः मानव जीवन के अस्तित्व का एक अर्थ होता है। दुसाध उसी अर्थ को एक नयी परिभाषा दे रहे हैं।

निष्कर्ष

राजनीति और विद्वता की दुनिया में दखल रखने के कारण दुसाध कृत डाइवर्सिटी मिशन की आलोचना भी हुई है। बहुजन आन्दोलन में अन्य अनेक मोर्चों पर काम करने वाले लेखकों ने दुसाध जी को दुत्कारा भी है। कुछ आलोचक तो मिशन के सारे योगदान को ही काला करके देख रहे हैं। परन्तु तथ्य यह है कि यदि सारी नकारात्मक आलोचना का जवाब न दिया जाए तो अनेक सकारात्मक प्रस्थापनाएं काफी वैध और स्वस्थ लगती हैं।

(क) यह सही है कि राजनीति तथा समाज के विविध पहलू केवल एक आर्थिक तत्व पर आश्रित नहीं है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि सब एक से हैं या बराबर महत्व के हैं। यह मानना ही पड़ेगा कि आर्थिक तत्व अधिक महत्त्वपूर्ण है।

(ख) एक आर्थिक विश्लेषक के रूप में, वह भी हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था से उपजी असमानता के विश्लेषक के रूप में दुसाध की आलोचना भले ही हो, परन्तु भारत में दलित समाज की दुर्दशा का समकालीन भूमण्डलीकरण के दौर का वह श्रेष्ठ व्याख्यता हैं। वह यह चित्रित करते हैं कि ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी संस्कृति व उसके संजाल ने किस तरह भारत के बहुजनों को प्रभावित किया है। उनके आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक सोच को कैसे बदला है।

(ग) यद्यपि दुसाध जी अपनी प्रस्थापना और विश्लेषण को उस सीमा तक ले जाते हैं जो बहुत से विद्वानों को स्वीकार्य नहीं होगा, फिर भी भारत के राजनीतिक व सामाजिक अध्ययनों में इस प्रस्थापना का अपना महत्त्व है। माना कि ब्राह्मणवाद कोई अन्तर्राष्ट्रीय परिघटना नहीं है किन्तु इस तर्क के केन्द्र में एक वैधता तो है जिसे स्वीकार करना होगा। उदाहरण के लिए अमेरिकी संवृद्धि का बंटवारा तथा दक्षिण अफ्रीका का जैकब जुमा मॉडल

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

हमारे सामने हैं।

(घ) माना कि भारत की विविधता को केवल एक ही रूप में चित्रित नहीं किया जा सकता, परन्तु यह सही है कि समकालीन विकास की दिशा में दुसाध जी की जो सोच रहे हैं वह विस्मयकारी है। उन्होंने यह पहिचाना कि भारत की विविधता को पहचान कर ही उसी अनुपात में प्रतिनिधित्व प्रदान कर दिया जाता तो देश समग्र परिवर्तन के एक नये मोड़ पर खड़ा होता।

(च) भविष्य में यह विरोधाभास होगा कि जो दुसाध अपने को एक आर्थिक चिन्तक के रूप में याद करवाना चाहते हैं वह मसीहा के रूप में याद किये जायेंगे। एक ऐसा मसीहा जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण और व्यवस्थित सत्ता द्वारा दमन के विरुद्ध ताल ठीक कर खड़ा है। ऐसा करते समय वह प्राचीन बुद्धवाणी ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय'' को चरितार्थ कर रहे हैं।

(छ) दुसाध जी द्वारा प्रतिपादित इस कटु सत्य से आंखें नहीं मीची जा सकती कि भारत में वंचित बहुजनों के लिए ब्राह्मणवाद की वर्ण व्यवस्था जिम्मेदार हैं यह एक ऐसा अन्याय या गलती है जिसका ठीक किया जाना जरूरी है।

(ज) **दुसाध के विरोधी जो ब्राह्मणवाद को केवल संस्कृति तक सीमित करते हैं, वह भले यह कहें कि वह ब्राह्मणवाद को नहीं समझ रहे हैं, परन्तु सच्चाई यह है कि दुसाध जी पिछले ढाई हजार वर्ष की वर्ण व्यवस्था की ऐतिहासिकता का विश्लेषण कर अपना निर्णय दे रहे हैं जो अब तक भौतक तत्त्वों की शिकार रही है। उनका यह कहना है कि यही ऐतिहासिक विश्लेषण अब उन्हें उन तत्त्वों के शिकंजे से मुक्त करने जा रहा है। यहां वह एक नैतिक मसीहा की भूमिका में आ जाते हैं और यह आशा जगा रहे हैं कि मानव अनुभव केवल भौतिकवादी नहीं हरेगा। जब व्यक्ति भूख, भय एवं विपन्नता से मुक्त होगा तो वह अध्यात्मक की जिन्दगी जी सकेगा। यही तो विश्व के महामानव तथागत बुद्ध, प्रभु ईशु तथा विभिन्न धर्मों के पैगम्बरों का चिरन्तन ओर शाश्वत सन्देश है जिसकी प्रतिध्वनि दुसाध के चिन्तन और लेखन में दिखाई देती है।**

(लेखक बुंदेलखंड विश्वविद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं)

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

धन-धरती : डाइवर्सिटी केन्द्रित पहला उपन्यास

सुरेश पंडित

(2002 से भोपाल घोषणापत्र के जरिये राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा में आये डाइवर्सिटी के विचार ने बहुजन समाज के ढेरों चिंतकों और एक्टिविस्टों को स्पर्श किया। इससे दलित साहित्यकार भी अछूते नहीं रहे। अजय नावरिया, शीलबोधी, सुदेश तनवर इत्यादि सहित कई दलित साहित्यकारों ने अपनी कविता, कहानी, उपन्यास में इसे जगह दिया। किन्तु इस मामले में सबसे आगे निकल गए प्राख्यात दलित साहित्यकार विपिन बिहारी। उन्होंने बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के बैनर तले झारखण्ड में एच.एल. दुसाध द्वारा चलाई गयी गतिविधियों से प्रेरित होकर बाकायदे इस पर उपन्यास ही लिख दिया। वर्ष 2012 में प्रकाशित इस उपन्यास की भूमिका लिखा है मशहूर लेखक सुरेश पंडित ने। इससे अवगत कराने के लिए प्रस्तुत है धन-धरती पर सुरेश पंडित की भूमिका—डॉ. कौलेश्वर)

आसान नहीं हैं कामयाबी की राहें

डॉ. अम्बेडकर को निश्चित रूप से श्रेय जाता है कि उन्होंने आत्मविस्मृति-ग्रस्त दलित समुदाय को न केवल जाग्रत किया बल्कि एकजुट होकर अपने अधिकारों को हासिल करने के लिये संघर्ष करना भी सिखाया। दलितों में उन्होंने जो चेतना जगाई उसी का परिणाम है कि आज भारतीय समाज की मुख्यधारा में उन्हें उपयुक्त स्थान मिलने लगा है। इतना ही नहीं साहित्य रचना के क्षेत्र में सदियों से चले आ रहे सवर्णों के वर्चस्व को भी उन्होंने एक जबरदस्त चुनौती दी है और यह साबित कर दिखाया है कि वे इस क्षेत्र में भी उनसे पीछे नहीं हैं बल्कि यह कहना अधिाक युक्त युक्त होगा कि उन्होंने आत्मकथा लेखन में तो प्रतिष्ठित सवर्ण लेखकों को काफी पीछे छोड़ दिया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि पिछले कुछ

दशकों में दलित लेखकों की जो आत्मकथायें आई हें। उनसे दलित लेखन की एक खास पहचान बनी हे। इनमें उजागर तथ्यों ने पाठकों के सामने एक ऐसी तस्वीर रखी है जिसे वे देखकर भी अनदेखा करते आये थे।

आत्मकथा लेखन में बुलन्दियां छू लेने के बाद आजकल दलित लेखकों ने साहित्य की दूसरी विधाओं में भी पहल करनी शुरू कर दी है। आत्मकथा तो लेखक एक बार ही लिख सकता है इसलिए दलित लेखन में अब उसका युग बीत रहा है और कहानी व उपन्यासों में वे अने अनुभव संसार को व्यक्त करने में लगे हैं। उन्होंने तभी उनके पूर्वजों ने जो कुछ भोगा था उसे आत्मकथायें सामने ला चुकी हैं लेकिन अब वे और उनकी सन्तानें किन विसंगत सामाजिक स्थितियों से गुजर रही हैं उन अनुभवों को रूपाकार देने में आजकल दलित लेखक व्यस्त हैं। निश्चय ही पहले से हालात बदले हैं। शिक्षा तक दलितों की पहुंच सुगम हुई है जिससे उन्हें शासन प्रशासन और जनसेवा के क्षेत्रों में अपनी किस्मत आजमाने के अवसर मिलने लगे हैं। लेकिन अफसोस है पद और पैसा पा लेने के बावजूद उनके प्रति सवर्णों की भेदभावपरक मानसिकता बहुत नहीं बदली है। यह सच है कि किसी भी तरह की सत्ता के अंग बने दलितों को लोग सलाम करते हैं। अपने काम निकालने के लिए उनकी खुशामद भी करते हैं लेकिन यह भी सच है कि मन से वे उन्हें सम्मान नहीं देते, उन्हें दलित ही समझते हैं। इस तरह की सवर्णों की दुमुंही मनोवृत्ति और दैनन्दिन जीवन में सामने आ रही विसंगतियों को प्रकाश में लाना आज के दलित लेखन का प्रमुख ध्येय बन गया है।

विपिन बिहारी सालों से इस तरह की दुष्प्रवृत्तियों को अपने लेखन में रेखांकित करने में लगे हैं। अब तक वे इस विषय को लेकर काफी कुछ लिख चुके हैं। लेकिन दुख है उन्हें वह सम्मान नहीं मिल सका है जिसके वे हकदार हैं। मुझे लगता है कि उनका दिल्ली या अपने राज्य की राजधानी से दूर रहना, दलित लेखकों की खेमेबाजी से स्वयं को अलग रखना और किसी नामीग्रामी आलोचक को अपना गॉड फादर न बनाना भी वे कारण हैं जो उन्हें विशिष्ट बनने से वंचित रख रहे हैं। लेकिन लेखन उनके लिये यश या अर्थ का साधन नहीं है। वह तो उनके लिये एक मिशन है जिसे पूरा करने वे पूरी निष्ठा के साथ लगे हैं।

बहरहाल उनका 'धन धरती' उपन्यास मेरे सामने है। इसमें ऐसे अद्‌भुत नायक की सृष्टि की गई है जो पढ़ लिखकर समाज में कुछ बनना चाहता है। लेकिन उसकी राह में पग-पग पर कांटे बिछाये जाते हैं। पहले स्कूल में लेने से आनाकानी की जाती है फिर उसे सवर्णों लड़कों से अलग बैठाया जाता है। स्कूल के कुएं से पानी नहीं पीने दिया जाता। मौका मिलते ही सवर्ण लड़के उसे पीट डालते हैं और समय समय पर उसका अपमान करना उनके लिये एक मनोरंजक खेल बन जाता है। इतना ही नहीं उसके चोटी तिलकधारी मास्टर जी भी उससे नफरत करते हैं। उसे स्कूल से भगाना चाहते हैं। उसकी बात-बेबात पर इतनी पिटाई करते हैं कि वह लहूलुहान हो जाता है। इन सारी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद वह हिम्मत नहीं हाराता। अपने लक्ष्य को पाने के लिये वह सब कुछ सहन करता जाता है। आखिर पढ़ाई खत्म होती है और उसे उसके गांव के पास ही एक स्कूल में नौकरी मिल जाती है। यहां तक का घटनाक्रम लगभग वैसा ही है जैसा दलित आत्मकथाओं में प्रायः देखने को मिलता हे। लेकिन इसका महत्त्व उनसे इसलिये बढ़ जाता है क्योंकि नायक पढ़ लिखकर और नौकरी पाकर ही संतुष्ट नहीं हो जाता। वह उन आत्मकथाओं के नायकों से इसलिये भिन्न व विशिष्ट है क्योंकि उसने अपने अध्ययन काल में जो यातनायें सही हैं, जिस तरह की जिल्लत का वह शिकार होता रहा है वह भरसक प्रयत्न करता है कि उसके गांव की नई पीढ़ी भयावह स्थितियों से न गुजरे।

दलित लेखकों व इस समुदाय के उन लोगों में जो आरक्षण या अपनी योग्यता की बदौलत उच्च पदों पर पहुंच गये हैं या सत्ता में भागीदार बन गये हैं, प्रायः यह देखा जाता है कि वे अपने लोगों के लिये उतना कुछ नहीं करते जितने की उनसे अपेक्षा की जाती है। इतना ही नहीं वे सवर्णों की तरह सोच व जीवन शैली अपनाने में भी पीछे नहीं रहते। इनमें कुछ अपवाद हो सकते हैं लेकिन बहुसंख्यक ऐसे ही लोग हैं, पर नायक ऐसा बनने से इन्कार कर देता है। वह अपने जातिय भाईयों के साथ रहकर उनके दुख सुख में भागीदार बनता है और उन्हें जलालत की जिन्दगी से निजात दिलाने की कोशिश में लगा रहता है।

टीका गुरू यद्यपि हैं तो मामूली से अध्यापक ही पर उनके हौसले अपने लोगों के लिये वह सब कर देने के हैं जो वे अपने जीवन को खतरे में डालकर भी कर सकते हैं। किसी दलित बच्चे को पढ़ने में उन जैसी मुसीबतों का सामना न करना पड़े इसके लिये वे स्कूल या समाज से लड़ने की बजाय अधिकाधिक दलित बच्चों को पढ़ने के लिये प्रेरित करते हैं ताकि उनकी संख्या इतनी हो जाय कि वे सवर्ण बच्चों का मुकाबला कर सकें। अपने अध्यापकों को भी उनके साथ उचित व्यवहार करने के लिये विवश कर सकें। शिक्षित होने के लिये संगठित होना जरूरी है। संगठन ही वह ताकत है जिससे दमन का विरोध हो सकता है और प्रतिपक्षियों को अपना व्यवहार सही करने के लिय विवश किया जा सकता है।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

अन्य गांवों की तरह इस गांव में भी दलित उन लोगों के अत्याचार के शिकार होते रहते हैं जिनके पास पैसा है, ताकत है, शासन प्रशासन तक पहुंच है और जातीय श्रेष्ठता का दंभ है। इसके प्रतिरोध के लिये भी वे दलितों को आपसी झगड़े खत्म करके एक हो जाने के लिये प्रेरित करते हैं। सच है कि उनके इन प्रयासों को आसानी से सफलता नहीं मिलती लेकिन वे विचलित नहीं होते। बार-बार कोशिश करते हैं तब कहीं उन्हें अपने मकसद में कामयाबी मिलती है इसके लिये उन्हें कीमत भी भारी चुकानी पड़ती है। कभी पिटते-पिटते बचते हैं तो कभी किसी और साजिश के शिकार होते हैं। पर वे अपनी जिद नहीं छोड़ते। कहते हैं जिद से ही दुनिया बदलती है। टीका गुरू अपने समुदाय की मानसिकता को बदलने में जो थोड़ी कामयाबी हासिल करते हैं वह इस जिद का ही परिणाम होती है।

दलित समुदाय आज भी पिछड़े वर्ग के लोगों तक से पिछड़ा है। इसका कारण गरीबी और बेरोजगारी तो है ही उनकी शिक्षा के प्रति अरुचि भी है। जो दलित अब कुछ जाग्रत हुए हैं और शिक्षा के महत्व को समझने लगे हैं उनमें यह महत्वाकांक्षा पनपने लगी है कि उनके बच्चे भी पढ़ लिखकर कुछ बन जायें ताकि उन्हें वे अपमान, अत्याचार न भुगतने पड़ें जिनसे उनके बुजुर्ग गुजर चुके हैं। लेकिन इस चाह के रास्ते में आज भी बड़ी बाधायें है। वे स्कूलों, कॉलजों में तो भेदभाव के शिकार होते ही हैं आईआईटी और आईआईएम जैसे उच्च प्रोफेशनल प्रशिक्षण संस्थानों में भी इस तरह की मुसीबतों से मुक्त नहीं हो पाते। यही कारण है कि समय-समय पर इनमें पढ़ने वाले दलित छात्रों की आत्महत्याओं के समाचार सुनाई देते रहते हैं। विपिन बिहारी इन सारे जीवन यथार्थों से भलीभांति परिचित हैं। इसलिये वे अपने इस उपन्यास में दलितों को उन रणनीतियों से अवगत करवाते हैं जिनसे वे मुसीबतों से पार पा सकते हैं।

उनके नायक का चिरित्र निश्चित रूप से एक उदाहरणीय चरित्र है। लेकिन उसमें कहीं अमिमानवीयता आरोपित नहीं हुई है। वह बिल्कुल सीधा सादा जीवन जीते हैं। औरों के लिये जीने मरने को तैयार देखकर अक्सर उनकी पत्नी से झड़प होती रहती है फिर भी उनके पति-पत्नी के रिश्तों में कभी कोई दरार दिखाई नहीं देती। निश्चित रूप से समाज में उन जैसे लोग बहुत कम होते हैं। लेकिन होते जरूर हैं। उन्हीं की छोटी छोटी कारगुजारियों से समाज की जड़ता टुट रही है। लोग समझ रहे हैं कि उन्हें इज्जत, आत्मनिर्भरता और बराबरी की जगह पाने के लिये स्वयं को ही समर्थ बनाना होगा। सरकारी योजनायें, कानूनी कार्रवाइयां उनकी मदद तो कर सकती हैं, सबल नहीं बना सकती।

बहरहाल विपिन बिहारी का यह उपन्यास एक अन्य कारण से हिन्दी दलित साहित्य में मील का पत्थर बनेगा। मैंने इस पुस्तक की भूमिका में शुरू में ही लिखा है कि आज साहित्य रचना के क्षेत्र में सदियों से चले आ रहे सवर्णों के वर्चस्व को उन्होंने (दलित साहित्यकारों) एक जबरदस्त चुनौती दी है और यह साबित कर दिखाया है कि वे इस क्षेत्र में उनसे पीछे नहीं हैं। विशेषकर आत्मकथा लेखन में तो प्रतिष्ठित सवर्ण लेखकों तक को पीछे छोड़ दिया है। किन्तु तमाम उपलब्धियों के बावजूद दलित साहित्यकारों की आर्थिक पहलू के प्रति उदासीनता चिन्ता का विषय रही है। गैर-दलित ही नहीं खुद कई दलित चिंतक भी आर्थिक पहलू की उपेक्षा के लिए दलित साहित्यकारों की आलोचना करते रहे हैं। कहा जा सकता है आर्थिक मुद्दों की अनदेखी ही दलित साहित्य का अन्यतम दुर्बल पक्ष रहा है।

दलित साहित्य मुख्यतः वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मणवाद के विरोध पर केन्द्रित रहा है। किन्तु वर्ण-व्यवस्था और ब्राह्मणवाद के आर्थिक पक्ष पर उतनी रोशनी नहीं डाली गई जितनी की दलित समाज को जरूरत थी। दलितों की आर्थिक मुक्ति का प्रश्न महज नौकरियों में आरक्षण तक रहा। जबकि डॉ. आंबेडकर ने 1942 में अंग्रेजों के समक्ष गोपनीय ज्ञापन सौंपकर पीडब्लयूडी के ठेकों तक में आरक्षण अर्थात प्रतिनिधित्व की मांग उठाई थी। इस बात को ध्यान रखकर स्वतंत्र भारत के दलित साहित्यकारों को चाहिए था कि वे नौकरियों के अतिरिक्त अर्थोपार्जन के अन्य क्षेत्रों में भी दलित समाज की हिस्सेदारी की मांग उठाते। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उधर जिस आरक्षण के सहारे कुछ दलित राष्ट्र की मुख्यधारा से जुड़ते जा रहे थे उस पर 1991 में गृहित भूमंडलीकरण की अर्थनीति से संकट मड़राने लगा।

भूमंडलीकृत अर्थनीति के परिणामों ने साबित दिया कि इसका मुख्य लाभार्थी वह विशेषाधिकार युक्त सुविधासंपन्न तबका होगा जिसका वर्ण-व्यवस्था के अर्थशास्त्र के कारण अर्थोपार्जन के अधिकांश स्रोतों पर भरपूर कब्जा है। इन्हीं बदली हुई परिस्थितियों में दलित अधिकारों की चिन्ता करने और पाने के लिए संघर्ष करने वाले कुछ दलित चिन्तकों को समझ में आया कि सिर्फ सरकारी नौकरियों के सहारे दलितों का वजूद नहीं बचाया जा सकता। इसके लिए उन्हें अन्यान्य आर्थिक गतिविधियों में भी हिस्सेदारी दिलानी होगी। इस जरूरत को ध्यान में रखकर पहले चन्द्रभान प्रसाद और उनके बाद एच.एल. दुसाध ने अमेरिका के डाइवर्सिटी सिद्धान्त से प्रेरणा लेकर दलितों के लिए सरकारी और निजी क्षेत्र की नौकरियों के साथ सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, फिल्म-टीवी इत्यादि ने भागीदारी की मांग उठाना शुरू किया।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

उनके प्रयास से उत्तर प्रदेश में जहां सभी प्रकार के सरकारी ठेकों में दलितों का भागदारी मिल गई है, वहीं केन्द्र सरकार ने भी हाल ही में उनके लिए सरकारी खरीद में 4 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की है।

बहरहाल डाइवर्सिटी के विचार को फैलाने के लिए बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के अध्यक्ष एच.एल. दुसाध एक कस्बे में जाते हैं। उनके विचार से एक गांव के दलित युवकों में हर क्षेत्र में भागीदारी की चाह पैदा होती है और वे सांमंतों से संघर्ष कर किस तरह भागीदारी हासिल करते हैं यही इस उपन्यास का विशेष आकर्षण है। एक तरह से इस कारण डाइवर्सिटी केंद्रित यह उपन्यास दलित साहित्य में नया आयाम जोड़ देता है।

(लेखक चर्चित चिंतक व पत्रकार हैं।)

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

डाइवर्सिटी, बीडीएम और दुसाध

–डॉ. कौलेश्वर

डाइवर्सिटी : आंबेडकरी आन्दोलन का पर्याय

डाइवर्सिटी आन्दोलन और इसके प्रसार-प्रचार पर प्रकाश डालते हुए कई लेख और पुस्तकें प्रकाशित हुईं हैं, किन्तु इस मामले में विशेष उल्लेखनीय काम डॉ. विजय कुमार त्रिशरण का है। उन्होंने दो खंडो में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'आरक्षण बनाम डाइवर्सिटी ' में इस पर बहुत ही विस्तार से लिखा है। उनकी 72 पृष्ठीय इस पुस्तक के दूसरे खंड की भूमिका मैंने ही लिखी थी। मैंने भूमिका में कहा था–'आज की तारीख में डाइवर्सिटी आंबेडकरी आन्दोलन का पर्याय बन चुका है। 1938 में बाबा साहेब अंबेडकर ने तीव्र इच्छा जाहिर की थी कि दलित आन्दोलन दलितों के सामाजिक कष्टों के मुकाबले उनके आर्थिक कष्टों के निवारण पर केन्द्रित हो। बाबा साहेब ने जो चाहा था वह 21 वीं सदी में भूमंडलीकरण के विस्तार के साथ-साथ आगे बढ़ रहा है। इसका प्रमुख श्रेय डाइवर्सिटी आन्दोलन को जा रहा है। यह आन्दोलन अभी जनांदोलन का रूप नहीं लिया है, लेने की प्रक्रिया में है। यह मुख्यतः लेखन के रूप में है। इस वैचारिक आन्दोलन के फलस्वरूप दलित समाज में नौकरियों से निकल कर सप्लाई, डीलरशिप, ठेकों, फिल्म-मीडिया इत्यादि में संख्यानुपात में हिस्सेदारी की चाह पैदा हो रही है।

डाइवर्सिटी के योद्धा

डाइवर्सिटी आन्दोलन को इस मुकाम पर पहुचाने में एच.एल.दुसाध, चंद्रभान प्रसाद, बुद्ध शरण हंस, दिलीप मंडल के साथ ही डॉ.विजय कुमार त्रिशरण ने ऐतिहासिक कार्य किया है। डॉ. त्रिशरण न सिर्फ वर्षों से इस पर लगातार कलम चला रहे

हैं, बल्कि फिल्ड में उतरकर जन-जागरण भी चला रहे हैं। इस दिशा में 2009 में प्रकाशित 'आरक्षण बनाम डाइवर्सिटी' उनकी महत्त्वपूर्ण रचना है। उसकी सफलता से उत्साहित होकर उन्होंने यह दूसरा खण्ड तैयार किया है।'[1]

डाइवर्सिटी की अहमियत समझाते हुए उन्होंने लेखकीय में कहा है,' शूद्रों और अतिशूद्रों के लिए भारतीय संविधान में उपबंधित आरक्षण की व्यवस्था उनके लिए सवर्णों द्वारा चुकाए जाने वाले मात्र ऋण के ब्याज के समान है। मूलधन पर कब्जा तो अभी भी शोषक और समान्त वर्ग का ही है। शुद्र-अतिशूद्र और धर्मपरिवर्तित अल्पसंख्यक समुदाय भारत देश के मूलनिवासी हैं, बहुसंख्यक हैं फिर भी, निर्लज्जतापूर्वक धोखे से विदेशी आर्य ब्राह्मणों द्वारा लुटे गए हैं। इसी का परिणाम है कि आज दलित बहुजन अपने ही धरती पर गुलाम हैं, कंगाल हैं। परन्तु अब और गुलामी बर्दाश्त नहीं करना है। अपनी खोई हुई धन, धरती और सत्ता को फिर से हासिल करना है। इसके लिए सबसे उत्तम और कारगर उपाय है अपनी संख्यानुपात में भागीदारी सुनिश्चित कराना। भागीदारी के इसी सिद्धांत को डाइवर्सिटी कहते हैं। यह जितना ही लाभदायक है, उतना ही मुश्किल है इसका कार्यान्वयन। परन्तु बिलकुल संभव है। इसके लिए सतत त्यागपूर्ण जन-आन्दोलन की आवश्यकता है, तभी हम अतीत के गौरव और वैभव को प्राप्त कर सकते हैं। यह पुस्तक इसी दिशा में क्रान्ति की चिंगारी पैदा करने का एक प्रयास है।'[2] उन्होंने आरक्षण की सीमाबद्धता को उजागर करते हुए कहा है—:

आरक्षण की सीमाबद्धता

1. आरक्षण सिर्फ शिक्षा, राजनीति और सरकारी नौकरियों में मिलता है। अन्य क्षेत्र जैसे निजी क्षेत्र, न्यायपालिका, राज्यसभा, विधान परिषद, मीडिया, सप्लाई, डीलरशिप, विज्ञापन, उद्योग-व्यापार में नहीं है।
2. आरक्षण कुछ लोगों को ही जीविका का आधार मुहैया करता है। अधिसंख्य लोग बेरोजगार और विपन्न अवस्था में रहते हैं।
3. प्राप्त आरक्षण की सभी सीटें भरी नहीं जाती हैं...शासक वर्ग आरक्षण नीति के सफल कार्यान्वयन के प्रति उदासीन है।
4. उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकारण और स्पेशल इकॉनोमिक जोन के कारण गैर सरकारी क्षेत्र की नौकरियां बढ़ रही हैं, जहां आरक्षण की व्यवस्था नहीं है। एल.पी.जी. और सेज बहुजनों की ताबूत में कील के समान हैं।

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि मौजूदा आरक्षण नीति आज के सन्दर्भ में अपर्याप्त और अप्रासंगिक हो गयी है। ऐसे में आरक्षण के स्थान पर कोई अन्य विकल्प की आवश्यकता है जो बहुजनों के सर्वांगीण विकास की उंची उड़ान भरने के लिए अवसर प्रदान करे; देश को सशक्त समृद्ध और विकसित बनाये तथा आर्थिक गैर-बराबरी दूर कर सामजिक विषमता को पाटे। ऐसा विकल्प है और वह है, 'डाइवर्सिटी'[3] (वही-24-25)।

डाइवर्सिटी की व्यापकता

आरक्षण की तुलना में डाइवर्सिटी निम्नलिखित दृष्टिकोण लाभप्रद है, यह बताने के लिए उन्होंने निम्न तर्क दिया है

1. सबों को रोजगार पाने का समान अवसर मिलेगा, जो नौकरी में नहीं हैं उनको भी। इन्हें ठेका, आपूर्ति, निर्माण, पार्किंग, व्यवसाय आदि का मौका मिलेगा।
2. दलित पूँजी का विकास तथा भारत का सर्वांगीण विकास होगा। वर्तमान में विकास का मतलब है मात्र सवर्णों का विकास। भारत में 53 अरबपति हैं परन्तु उनमें से एक भी दलित नहीं है। भारत में दलितों के लिए अरबपति होना ख्वाब देखने जैसा है।
3. दमन और अत्याचार कम होंगे। आर्थिक विपन्नता और अशिक्षा के कारण ही अधिकाँश दलित सामंतवादी अत्याचार के शिकार होते हैं। डाइवर्सिटी से पीड़ित वर्ग आर्थिक रूप से सशक्त होगा जिससे वह अत्याचारी वर्ग का माकूल जवाब दे सकेगा।
4. सदियों से व्याप्त आर्थिक गैर बराबरी दूर होगी।
5. जातीय भेदभाव और अस्पृश्यता मिटेगी।
6. दलित पूँजी का विकास होने से उनकी क्रय शक्ति बढ़ेगी। गरीबी से अमीरी की ओर बढ़ने से इन्सान में कीमती और उपयोगी वस्तुएं खरीदने की स्वाभाविक इच्छाशक्ति जगती है। इससे वस्तुओं की विक्रयशीलता में वृद्धि होती है। ऐसा होने पर बढियां मार्केटिंग होगा, भारतीय बाजार को खूब मुनाफा होगा और भारत की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी।
7. डाइवर्सिटी से भारत तेजी से विकसित देशों की पंक्ति में खड़ा हो सकेगा।
8. लैंगिक डाइवर्सिटी लागू होने से सभी क्षेत्रों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

बढेगा तथा इनका सशक्तीकरण होगा। इससे महिला उत्पीड़न में कमी आएगी।

9. डाइवर्सिटी लागू होने पर उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण और सेज जैसे बहुजन विध्वंशक योजनाओं के कदम रुकेंगे।
10. सभी क्षेत्रों में भागीदारी प्राप्त होने पर बहुजन समाज की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। उनकी मानसिकता में परिवर्तन आएगा और वे ब्राह्मणवादी गुलामी से मुक्त होंगे।'[4] डाइवर्सिटी की अवधारणा शुद्ध भारतीय यह साबित करने के लिए उन्होंने लिखा है, 'वैसे तो डाइवर्सिटी सफल प्रयोग सर्व प्रथम अमेरिका में हुआ, परन्तु इसका भारत से ही गया। अमेरिका में 1968 में डाइवर्सिटी पर विचार जबकि भारत में 29 अक्तूबर,1942 को ही बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर इसका बीजारोपड़ कर चुके। इसी दिन उन्होंने एक गोपनीय दस्तावेज के जरिये अंग्रेजी सरकार के समक्ष ठेकों में आरक्षण की मांग रखा था।'[5]

डाइवर्सिटी के सूत्रपात्री : चंद्रभान प्रसाद

वह नयी सदी भारत में इसकी शुरुआत पर रौशनी डालते हुए लिखते है। 'किसी कारणवश वह आन्दोलन दब गया था परन्तु 60 साल बाद प्रसिद्ध स्तंभकार और लेखक चंद्रभान प्रसाद ने संख्यानुपात के अनुसार दलितों को ठेकों सहित सभी क्षेत्रों में भागीदारी का मामला पुनः उठाया। इसे ही डाइवर्सिटी का नाम दिया गया। डाइवर्सिटी का सीधा मतलब है आय के सभी स्रोतों पर सभी वर्गों की आबादी के अनुसार उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना। चन्द्रभान जी के मार्गदर्शन और मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री मा.दिग्विजय सिंह के सहयोग से भारत में सर्व प्रथम 12-13 जनवरी, 2002 को भोपाल कांफ्रेंस में 21 सूत्रीय दलित एजेंडा, जिसे भोपाल घोषणापत्र भी कहते हैं, जारी हुआ। इस कांफ्रेंस में 250 दलित बुद्धिजीवी उपस्थित हुए। इसका प्रमुख एजेंडा डाइवर्सिटी था। भोपाल घोषणा पत्र 21 वीं सदी में दलितों के लिए नयी रणनीति का दस्तावेज था। इस प्रकार भारत में डाइवर्सिटी का जन्म एक व्यवस्थित पॉलिसी के तहत भोपाल कांफ्रेंस में हुआ। इसे अपनाने हेतु तत्कालीन महामहिम राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने 25 जनवरी, 2002 को गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या राष्ट्र के समक्ष अपील किया था। भोपाल कांफ्रेंस की मुख्य भूमिका में चंद्रभान प्रसाद जी का नाम सर्वोपरि है।

एच.एल. दुसाध ने डाइवर्सिटी को दिया जन-आंदोलन का रूप

राष्ट्रीय स्तर पर बहुजन डाइवर्सिटी मिशन (बीडीएम)की स्थापना कर बहुजन चिन्तक व स्तंभकार एच. एल. दुसाध ने डाइवर्सिटी प्रचार-प्रसार को पूरे देश में एक जन-आन्दोलन का रूप दे दिया है। मा. दुसाध पूरे देश में 'डाइवर्सिटी मैन ऑफ इंडिया' के नाम से जाने जाते हैं। वे बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के संस्थापक अध्यक्ष हैं। साठ वर्षीय दुसाध डाइवर्सिटी के पूर्णकालिक प्रचारक के रूप में अपना शेष जीवन अर्पण कर चुके हैं। इनके साथ सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं इंजी.बृजपाल भारती, प्रो. आइजे सिंह, पत्रकार दिलीप मंडल। वास्तव में डाइवर्सिटी को भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन तथा फ्रांस की क्रान्ति के तर्ज पर पूरे देश में फैलाने की आवश्यकता है।'[6] डाइवर्सिटी मूव्हमेंट के संघर्षशील मिशनरी शिशुपाल सिंह- दिल्ली डाइवर्सिटी ग्रुप, जयपाल सिंह- भारतीय दलित साहित्य अकादमी, आर के चौधरी- बीएस-4, बुद्ध शरण हंस- आंबेडकर मिशन,पटना, विजय कुमार त्रिशरण,- आंबेडकर चेतना परिषद, झारखण्ड, उम्मेद सिंह गौतम-समता सैनिक दल इत्यादि ने अपने-अपने संगठनों द्वारा डाइवर्सिटी आन्दोलन को जोरदार तरीके से अग्रसर किया तथा निरंतर इस प्रक्रिया में सक्रिय हैं। डॉ. संजय पासवान, पूर्व केन्द्रीय मंत्री ने पहली बार इसे संसद में उठाया। बिहार के जुझारू नेता छेदी पासवान भी इसे आगे बढाने योगदान कर रहे हैं।'[7]।

बीडीएम बनाम कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र

आरक्षण बनाम डाइवर्सिटी में डॉ. त्रिशरण एक जगह बहुत दृढ़ता से लिखते हैं—हमें डाइवर्सिटी सिद्धांत को लागू करवाने के लिए इस सम्बंधित आन्दोलन को भारत के 1857 और फ्रांस के 1789 की क्रान्ति का रूप देना पड़ेगा। यह कार्यक्रम महीनों और वर्षों का नहीं, सम्पूर्ण सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन के लिए इसे दशकों और शतकों तक जारी रखना होगा।[8] बहुजन डाइवर्सिटी मिशन के घोषणापत्र के विषय में लिखते हैं—'मा.एच.एल. दुसाध साहब द्वारा लिखा गया बी.डी.एम. का घोषणापत्र बहुजन समाज के उत्थान और उद्धार का एक मंत्र-संहिता है। इस बहुजन मुक्ति मंत्र-संहिता में कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो से भी ज्यादा आग है। यदि गहरी निद्रा में सुसुप्त हमारे समाज के लोगों में, इस आग से थोड़ी भी गर्माहट पैदा हुई तो, मैं विश्वास के साथ कहता हूँ, बीडीएम का घोषणा-पत्र एक दिन कार्ल मार्क्स और एंगेल्स के कम्युनिस्ट-मेनिफेस्टो पर भारी पड़ेगा। इस मेनिफेस्टो के मन्त्रों को धरातल

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

पर लाने के लिए हमें बाबा साहेब द्वारा 14 अक्तूबर,1956 को नागपुर में उस आह्वान का स्मरण करना पड़ेगा जिसमे उन्होंने कहा था कि अपनी मुक्ति और उन्नति के लिए अपनी नेक कमाई का 20 वां भाग दान करना चाहिए। वास्तव में भागीदारी अर्थात डाइवर्सिटी साम्यवाद का एक नवीं सिद्धांत है। जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने संसार के दुःख निवारण हेतु नया धम्म-अष्टांगिक मार्ग का आविष्कार किया था, उसी प्रकार भागीदारी दर्शन आज के सन्दर्भ में आर्थिक गैर-बराबरी दूर करने का एक नया खोज है। इस नवीन आर्थिक दर्शन के जनक डॉ. बाबा सहेब आंबेडकर हैं। माननीय चंद्रभान प्रसाद जी क प्रति हम आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने भागीदारी दर्शन के इस नवीन खोज को व्यवहारिकता के धरातल पर भारत में सबसे पहले उतारा है तथा माननीय एच.एल. दुसाध जी भागीदारी आन्दोलन के सेना-नायक के रूप में लक्ष्य की ओर द्रुत गति से अग्रसर हैं। हमारा दायित्व है कि हम इस आन्दोलन में भाग लेकर सामाजिक कर्ज उतारें।'[9]। बहरहाल यदि हम डाइवर्सिटी लागू करवाने के लिए आन्दोलन चलाते हैं तो सफलता मिलना खूब कठिन नहीं है। स्मरण रहे पिछले डेढ़ दशक से चल रहे डाइवर्सिटी आन्दोलन में समाज की भागीदारी नहीं रही, इसे जन-आन्दोलन का रूप नहीं गया। यह आन्दोलन चंद्रभान प्रसाद, एच.एल.दुसाध, दिलीप मंडल, बुद्ध शरण हंस, डॉ विजय कुमार त्रिशरण व अन्य कई बहुजन बुद्धिजीवियों की सक्रियता से आगे बढ़ा है, अवाम की भागीदारी नहीं रही। बावजूद इसके डॉ. त्रिशरण के ही शब्दों में 'डाइवर्सिटी आन्दोलन का व्यवहारिक प्रभाव निम्नलिखित रूपों में फलीभूत हुआ है।

डाइवर्सिटी आन्दोलन का असर

1. 27 अगस्त, 2002 को मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री मा. दिग्विजय सिंह ने अपने राज्य में सप्लायर डाइवर्सिटी लागू किया। इसके तहत सरकार के समाज कल्याण विभाग में होने वाली कुल खरीदारी में अनुसूचित जाति/जनजाति को 30 प्रतिशत आपूर्ति का कानूनी अवसर सुलभ कराया गया। यह कदम सदियों से श्रम पर निर्भर रहने वाले दलितों को उद्योगपति-व्यापारी बनाने की दिशा में एक ऐतिहासिक दिवस था। इस योजना के तहत दलित और आदिवासी सप्लायरों ने 50 करोड़ रूपये मूल्य की वस्तुएं सरकार को सफलता पूर्वक सप्लाई की। इस योजना को यादगार बनाने के लिए ही बहुजन डाइवर्सिटी मिशन की ओर से प्रत्येक वर्ष 27 अगस्त, 2002 को 'डाइवर्सिटी डे' मनाया जाता है।
2. उत्तर प्रदेश में मायावती सरकार ने भी एक ऐतिहासिक फैसला के तहत हुक्म जारी किया गया कि सरकार की सहायता से स्थापित संचालित निजी उद्योग-धंधों में मालिकों को कुल सृजित रोजगार का 10 प्रतिशत अनुसूचित जाति/जनजाति और 10 प्रतिशत गरीब, पिछड़े एवं धार्मिक अल्पसंख्यक के लोगों को नौकरियाँ देनी होगी। सरकार का यह फैसला डाइवर्सिटी के विकास की दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम है जो न केवल उद्योग के क्षेत्रों में बल्कि शिक्षण संस्थानों में भी लागू होगा। इस प्रकार अगर प्रत्येक राज्य डाइवर्सिटी लागू करता है तो निश्चित ही भारत में सभी क्षेत्रों में समानता आएगी।
3. मायावती सरकार ने एक और ऐतिहासिक फैसले के तहत 25 जून, 2009 को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए ठेकों में 23 प्रतिशत कोटा लागू कर दिया। बाबा साहेब ने 29 अक्तूबर,1942 को दलितों के लिए ठेकों में जो आरक्षण सम्बन्धी मांग उठाई थी उसे मायावती ने 67 वर्षों के बाद पूरा कर दिया। ठेकों यह आरक्षण शुरू में पांच लाख की राशि तक था परन्तु इसे बढाकर चालीस लाख तक कर दिया गया। इससे दलितों के लिए उद्योग-व्यापार में बंद दरवाजे खुल गए।
4. 5 जून, 2009 को केन्द्रीय कानून मंत्री वीरप्पा मोइली अमेरिकी अफर्मेटिव एक्शन के तर्ज पर भारत में भी आरक्षण लागू करने की बात पर विचार करने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि 'सरकार निजीक्षेत्र में आरक्षण की दिशा में कदम उठाना चाहती है और उन्हें इस दिशा में अमेरिकी मॉडल को अपनाने में कोई गलत बात नजर नहीं आती है। साठ के दशक में अमेरिका ने समान अवसर की अवधारणा को अपनाया और अब उनके यहाँ इक्वेलिटी एक्ट है। इसी तरह हम भी निजीक्षेत्र में इस दिशा में कदम उठाना चाहते हैं।'
5. 5 जुलाई, 2009 को कार्पोरेट अफेयर्स मंत्री सलमान खुर्शीद ने कानून मंत्री की बात का समर्थन करते हुए कहा कि 'निजी क्षेत्र में अवसरों के बटवारे का मानक बनेगी डिप्राईवेशन और डाइवर्सिटी'।
6. 15 सितम्बर, 2009 को सामाजिक न्याय और आधिकारिता मंत्रालय के तरफ से वित्त मंत्रालय को एक प्रस्ताव मंजूरी के लिए भेजा गया जिसमे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को सरकारी खरीद

E/H.L. Dusadh/Dusadh ji Book.p65
VIth proof 10.11.2017

में 30 प्रतिशत डीलरशिप देने की बात कही गयी।

7. डाइवर्सिटी मूव्हमेंट भारतीय जनता पार्टी जैसे उग्र हिंदुत्वनिष्ठ दल को भी आकर्षित और प्रभावित किया। 15 वीं लोकसभा के चुनावी घोषणापत्र भाजपा ने डाइवर्सिटी की बात की। उसके घोषणापत्र के पृष्ठ संख्या 29 पर स्पष्ट कहा गया कि 'हमारे समाज के दलित पिछड़े और वंचित वर्गों के लिए उद्यमशीलता एवं व्यवसाय को बढ़ावा दिया जाएगा ताकि भारत की सामाजिक विविधता पर्याप्त रूप में आर्थिक विविधता में प्रतिबिम्बित हो।

इस प्रकार डाइवर्सिटी आन्दोलन का प्रभाव अब व्यवहारिक रूप में दिखने लगा है। यह राजनीतिज्ञों और बुद्धिजीवियों के मन-मस्तिष्क में हलचल पैदा करने लगा है। अगर इस आन्दोलन को व्यापक स्तर पर संगठित संघर्ष के तहत जारी रखा गया तो निश्चित ही यह अपने मुकाम तक पहुंचेगा। भारत के सभी प्रदेशों की सरकारें डाइवर्सिटी लागू करने के लिए प्रेरित अथवा विवश होंगी।'[10]

सन्दर्भ

1. डॉ.विजय कुमार त्रिशरण, आरक्षण बनाम डाइवर्सिटी खंड-2, पृ-12
2. वही, पृ.-9
3. वही, 24-25
4. वही, पृ.-28-29
5. वही, पृ.-40
6. वही, पृ.-42
7. वही, 43
8. वही, पृ.-58
9. वही, पृ-59
10. वही, पृ-43-44

●●●